卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

कुब्जापत्रम्

(संस्कृतपत्रकाव्यम्)

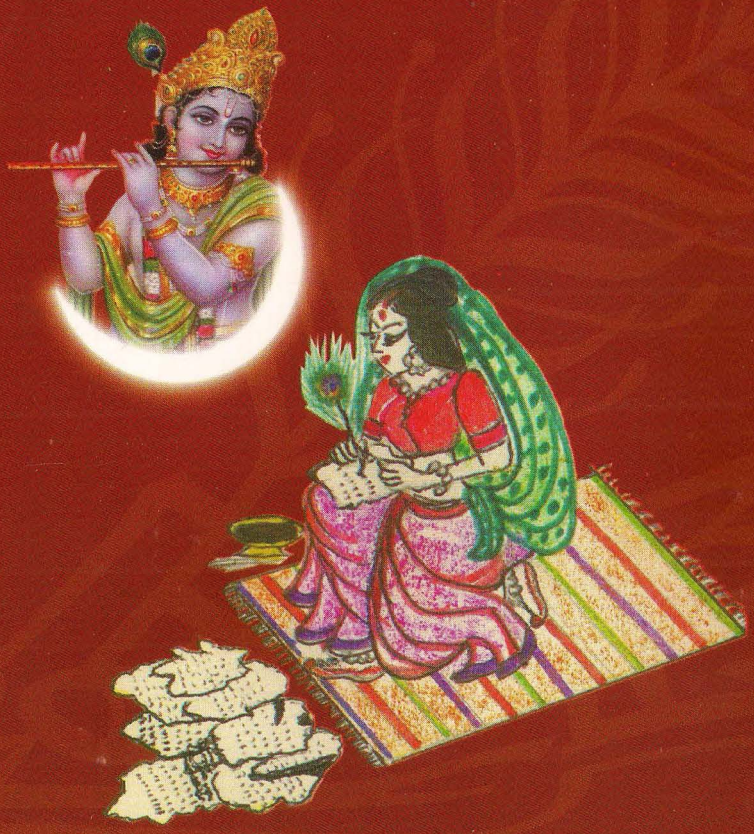

प्रणेता

महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य।

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय जीवनपर्यन्त कुलाधिपति
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरश्रीमज्जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

कुब्जापत्रम्

(संस्कृतपत्रकाव्यम्)

प्रणेता :

धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय, वाचस्पति
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
महाकवि स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज
जीवनपर्यन्त कुलाधिपति
जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय
चित्रकूट (उ०प्र०)

प्रकाशक :

जगद्गुरुरामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय
चित्रकूट (उ०प्र०)

प्रकाशक :
जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय
चित्रकूट (उ०प्र०)

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण, मकर संक्रान्ति २०५९
१४ जनवरी २००३

पुस्तक प्राप्ति स्थान :
श्रीतुलसीपीठ, आमोदवन
पो० नयागाँव, चित्रकूटधाम (सतना) म०प्र०

सौजन्य :
संस्कृतसेवानिष्ठ परमविद्वान्
श्रीशिवाकान्त द्विवेदी
उपजिलाधिकारी (बुलन्दशहर) उ०प्र०

न्यौछावर – बीस रुपये मात्र

मुद्रक :
साहित्य सेवा प्रेस
१५६, छीपी टैंक, रामा होटल कम्पाउण्ड
मेरठ (उ०प्र०)

पुरोवाकम्

श्रीः सर्वेभ्यः कृतिभ्यश्च स्वस्तिवाकं निगद्यते।
कुब्जापत्रे पत्रकाव्ये पुरोवाकमथीर्यते।।१।।

नवपृष्ठमिदं पत्रं नवधाभक्तिसंयुतम्।
नवभ्यश्च सखिभ्यो वै वृत्तैर्नवभिरीरितम्।।२।।

विकलाङ्गसमस्यानां समाधानात्मकानि च।
सूत्राण्युद्घाटितान्यत्र स्वानुभूत्या पदे पदे।।३।।

भ्रमरोद्देश्यगीतेषु यत् त्रिभिः कविपुङ्गवैः।
त्रिषु कुब्जां समुद्दिश्य जल्पितं कृष्णचेष्टितम्।।४।।

तेषां प्रत्युत्तराण्यत्र कुब्जयोक्तानि यत्नतः।
कटुमाधुर्यमिश्राणि स्वाद्यन्तां रसिकैर्मुहुः।।५।।

समाजे विकलांगानां सकलांगैर्यथा कृता।
उपेक्षा सुमनः प्रेक्षा सा प्रादर्शि यथार्थतः।।६।।

कुब्जाकृष्णसन्दर्भे नवीनायामभावना।
राष्ट्रलीलापदेशेन मयाऽत्रप्रकटीकृता।।७।।

न शृंगाररसज्ञानां विनोदायैव वैकृतिः।
सा तु सर्वजनीना स्यादित्येवावश्यकं शुभम्।।८।।

इदमेव परिप्रेक्षं मयाऽत्र प्रकटीकृतम्।
नवप्रतिभया युक्त्या कल्पनाकौशलेन च।।९।।

यदि राजप्रशंसायां भोगिनां प्रमुदेऽथवा।
काव्यं युज्येत कृतिभिः तदा वन्ध्या सरस्वती।।१०।।

प्राकृतानां गुणग्रामैर्ग्राम्यभावानुवादकैः।
सरस्वती न मोमोत्ति पङ्के धेनुरिवार्दिता।।११।।

यस्य काव्ये न जृम्भन्ते रामभक्त्यम्बुवीचयः।
राष्ट्रियाश्च शुभा भावा स वै ग्रामहरिःस्मृतः।।१२।।

विकलाङ्गजनानूनं कथंस्युः प्रापितादराः।
कथं राष्ट्रेण युज्येरन् प्रश्नोत्रायं समाहितः।।१३।।

नवीनोऽयं प्रयोगो मे देववाग्वाङ्मये ननु।
प्राशत्स्यते सुकृतिभिः खलैश्चापि हसिष्यते।।१४।।

द्विवेदः श्रीशिवाकान्तः उपजानपदाधिकृत्।
सार्चनो मद्गिरा मृद्व्या साशिषा परिवर्ध्यते।।१५।।

तस्य सौजन्यजन्येन द्रविणेन प्रकाशितम्।
काव्यमेतद्धरत्वद्धा विकलांग विपद्गणम्।।।१६।।

कुब्जापत्रमिदं काव्यं गीतं गिरिधरेण च।
श्रीरामभद्राचार्येण रामराष्ट्रानुकीर्तनम्।।१७।।

कुब्जापत्रसुपुष्पं भारतमात्रे समर्पितं भातु।
गीतं गिरिधरकृतिना भूयाद् भव्याय भाव्यानाम्।।१८।।

इति मङ्गलामाशास्ते
श्रीराघवीयो जगद्गुरु रामानन्दाचार्यः
स्वामिरामभद्राचार्यः

नान्दीवाक्

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्।।

संस्कृत वाङ्मय के अनाद्यन्त नभोमण्डल में देदीप्यमान अनेकानेक कवि-नक्षत्रों ने अपनी अलौकिक ज्ञान-रश्मियों से समय-समय पर मानव जीवन के विभिन्न पक्षों की उद्भावना करते हुए, उन्हें सुसंस्कृत, परिष्कृत तथा प्रकाशमान किया है। फलतः (चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि) के सिद्धान्त में संस्कृत कवियों एवं काव्यशास्त्रियों की प्रबल आस्था सदा बलवती बनी रही है। संस्कृत भाषा एवं साहित्य में वाल्मीकि से लेकर अद्यावधि केवल वही कवि भारतीय जनमानस में आदरपूर्वक स्मरणीय रह सके हैं, जिन्होंने अपनी सारस्वत साधना का विनियोग मानवमात्र के परम निःश्रेयस प्राप्ति के मार्ग को प्रशस्त करने हेतु किया है। वस्तुतः किसी कवि की कोई रचना इस प्रेरणा के बल से ही सार्वजनीनता, सार्वभौमिकता तथा सार्वकालिकता के अत्यन्त उत्कृष्ट गरिमामय शिखर पर आरूढ़ हो पाती है, अन्यथा शुष्क स्रोतसा सरिता की भाँति काल के विपुल पुलिनों में स्वतः विलीन हो जाती है।

श्रीमज्जगद्गुरुरामानन्दाचार्य महाकवि स्वामी रामभद्राचार्य की प्रस्तुत रचना "कुब्जापत्रम्" ऐसी ही एक कालजयी कृति है, जिसमें महाकवि ने पारम्परिक कवियों द्वारा अत्यन्त उपेक्षित, अपमानित, किंबहुना विकृत रूप से वर्णित कुब्जा नामक चरित्र के यथार्थ मर्म को अपनी अनुपमेय सूक्ष्मेक्षिकासंवलित दृष्टि से हृदयावर्जक चित्र प्रस्तुत

किया है। कुब्जापत्रम् खण्ड काव्य गिरिधर कवि रचित एक अपूर्व कृति है, यह ऐसी अभिनव काव्यशैली की अवधारणा है, जिससे अब तक की संस्कृत काव्यपरम्परा पूर्णरूपेण अनभिज्ञ रही है। यह महाकवि के अपूर्व रचनाकौशल तथा उनकी नित नूतन, प्रयोगधर्मा काव्यप्रतिभा का मूर्त निदर्शन है। इस खण्डकाव्य में कुब्जा द्वारा राधा सहित नौ सखियों को प्रेषित नौपृष्ठात्मक पत्र में भगवद्भक्ति का उदात्त वर्णन किया गया है। कुब्जा द्वारा प्रेषित पत्र के प्रत्येक पृष्ठ में बारह श्लोक हैं तथा भिन्न भिन्न छन्दों मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, उपजाति, वसन्ततिलका, मालिनी, शालिनी तथा पृथ्वी में उपनिबद्ध हैं। काव्य का कलापक्ष जहाँ एक ओर महाकवि के अगाध वैदुष्य को स्थापित करता है, वहीं दूसरी ओर भावपक्ष उससे भी अधिक आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक बन गया है। सम्पूर्ण काव्य भवभयहारी व्रजेन्द्रनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति कुब्जा की अविचल भक्ति, पूर्णसमर्पण तथा अनन्य शरणागति पर ही केन्द्रित है। करुणावरुणालय भक्तवत्सल भगवान् देवकीनन्दन की निर्व्याज कृपा से कुब्जा अपने जन्मागत कुब्जात्व दोष से मुक्त होकर अत्यन्त सुन्दरी नारी बन गयी है। अब कुब्जा के अत्यन्त निर्मल मनोमुकुर में भगवद्भक्तिभास्वान का उदय हो चुका है, जिसके दिव्य प्रकाश का आभास गिरिधर कवि के उदय के पूर्व किसी भी कवि को नहीं हुआ। दुर्भाग्यवश कुब्जा के इस परम पवित्र सुदुर्लभ भक्तिभाव का पूर्ववर्ती कवियों ने श्रीकृष्ण के प्रति कुब्जा की गर्हित वासना समझकर उसकी निराधार निन्दा की। कुब्जा की यह चिरन्तव्यथा, आन्तरिक पीड़ा उसकी अगाध मानसिक वेदना तथा उसके अन्तस्तल में गहरे पैठी छटपटाहट हजारों वर्षों के बाद गिरिधर कवि की समानुभूति से ओतप्रोत वाणी

में ही अभिव्यक्त हो सकी। कुब्जा अपनी सखी ललिता को सम्बोधित करती हुई प्रथम पृष्ठ के अष्टम श्लोक में इस प्रकार कहती है–

सूरः शूरो रसपति कथा व्योमबीथी विहारे
रामाख्यानेऽनुपमकविता कौशलो हौलसेयः।
नन्दो नान्दौ ललितरचनागाथकः स्वानुभूत्या
जानीते मां गिरिधरकविस्तद्गिरा वो ब्रवीमि।।

वस्तुतः महाकवि ने कुब्जा की शारीरिक तथा मानसिक व्यथा को पूर्ण संवेदनात्मक तीव्रता के साथ अभिव्यक्त किया है। एक असहाय विकलांग अबला का समाज में किस प्रकार पदे पदे अपमान होता है उसकी अपनी शारीरिक विवशता के कारण जीवन कितना कठिन तथा दुःसह होता है इसका अत्यन्त कारुणिक व हृदयस्पर्शी वर्णन महाकवि ने पत्र के द्वितीय पृष्ठ के नवें श्लोक में इस प्रकार किया है–

क्वचित् सोमं सौम्याप्यनुपदमनिन्दं विवशवाक्
प्रकामं प्राशंसं क्वचिदिव विषं वृश्चिकसुता।
क्वचिद् गामाक्रोशं क्वचिदभजमार्ता खरवधूं
मनोनिघ्नन् निघ्नः किमिह विकलाङ्गो न सहते।।

भगवच्चरणों में कुब्जा की अटलनिष्ठा एवं भक्ति का भाव प्रवण वर्णन करते हुए महाकवि ने समस्त भ्रान्तियों का सहज ही निराकरण कर दिया हैं कुब्जा की भगवद्भक्ति अन्य सखियों की भक्ति से अधिक गहरी एवं उत्कृष्ट है तभी तो वह सखी इन्दुलेखा को सम्बोधित पृष्ठ में प्रथम श्लोक में कहती है–

यो युष्मदीयाधरसीधुसिन्धू
मग्नः समक्रीडत रासगोष्ठ्याम्।

स एव कुब्जा हृदयैकहारो,

व्यचीक्लृपत् सम्प्रति राष्ट्रलीलाम्।।

कुब्जा के हृदय के हार होने पर ही तो भगवान् ने "विकलांगभाजा समाः समस्याः" का निराकरण करते हुए अपनी राष्ट्रलीला के द्वारा समस्त राष्ट्रियों के दुःखों को समाप्त कर दिया। कुब्जा की स्वयं साध्यरूपा यह भक्ति किसी के लिए भी अनुकरणीय है। महाकवि ने कुब्जा की भक्ति की उदात्तता तथा उसमें अन्तर्निहित विनम्रता का भी बड़ा सुन्दर वर्णन पत्र के नवम पृष्ठ, जोकि श्री राधाजी को सम्बोधित है, में किया है। इस पृष्ठ के श्लोक संख्या १० में कुब्जा श्रीराधाजी के श्रीचरणों में स्वयं को अर्पित करती है तथा श्लोक ११ में नवल दम्पती श्रीराधामाधव के अपने हृदयांगण में विहार की कामना करती है। वस्तुतः यही महाकवि के इस काव्य का अभिप्रेतार्थ अथवा परम प्राप्तव्य लक्ष्य है, जो निश्चित ही सम्यगाधिगत है।

'कुब्जापत्रम्' संस्कृत काव्य परम्परा के अपार क्षितिज पर अभिनव अरुणोदय है, जिसकी स्वर्णिम रश्मियाँ सहृदयसरोजों को निरन्तर विकासमान करती रहेंगी। इसका अध्ययन एवं चिन्तन सम्पूर्ण मानव प्रजाति के लिए मुदमङ्गलकारी है, यह मेरा निरत्यय प्रत्यय है।

—शिवाकान्त द्विवेदी
पी०एस०एस०
उपजिलाधिकारी, बुलन्दशहर (उ०प्र०)

प्रकाशकीय

संस्कृतसाहित्यसागर की एक शुक्ति है—"क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे"। अर्थात् महापुरुषों की क्रियासिद्धि उनके सात्त्विक संकल्प में होती है, वह भौतिक उपकरण अथवा उपादान की अपेक्षा नहीं रखती। महापुरुष ही संसार के लिए कुछ ऐसा कर जाते हैं जो अनल्पकल्पपर्यन्त जीवन तथा सरस तो बना ही रहता है, साथ ही प्राणिमात्र के त्रितापों को ध्वस्त करके उन्हें जीवन के वास्तविक आनन्द की भी प्राप्ति करा देता है। ऐसे महापुरुष अभावों में भी खिलते हैं, उल्बणता में भी मुस्कुराते हैं और विकलांगता में भी सकलांगों से अधिक कार्य करने की क्षमता रखते हैं। विपरीत परिस्थितियों में भी अपने पावन लक्ष्य के शिखरों को सोत्साह चूमती हुई परमवन्दनीया कुब्जा और बड़े-बड़े ज्ञानगरिष्ठ वेदान्तियों के भी छक्के छुड़ा देने वाले महर्षि अष्टावक्र की विकलांगता और अजेयता से कौन परिचित नहीं है। शारीरिक विकलांगता की परिस्थितियों से जूझते हुए भी महर्षि अष्टावक्र ने जहाँ एक ओर अपनी 'गीता' में ज्ञान की उन गुत्थियों को सहजता से सुलझा दिया, जो बड़े बड़े अहम्मन्य तथा खूसट वेदान्तियों की सोच से बाहर की बात थी, वहीं दूसरी ओर विकलांगता के कारण ही परवशता का जीवन जीने वाली बेचारी साध्वी कुब्जा ने अपने सात्त्विक संकल्प से भगवत्प्रपन्नता प्राप्त की। आज ऐसे ऐतिहासिक क्षितिज पर, जब प्रतिभाओं का मूल्यांकन नहीं हो रहा हो, तब कुब्जा जैसी विकलांग महिला का कोई रोदन कैसे सुनेगा? उसके लिए तो परपीड़ा को देखकर करुणा की कालिन्दी प्रवाहित करने वाले तथा मानवता के मन्दिर में आदर्श जीवनमूल्यों

की स्थापना करने वाले महर्षि वाल्मीकि जैसे परम सन्त को ही आना होगा।

सौभाग्य से भारतमाता सात्त्विकता अथवा मानवता की ग्लानि देखकर परमपिता परमात्मा के अपार अनुग्रह से उन दिव्यरत्नों को प्रकट करती रहती है जो भारतमाता के पुत्र होने से भारतीय अस्मिता के प्रति तो पक्षपात रखते ही हैं साथ ही प्राणिमात्र के प्रति निरपेक्षता, निर्वैरता तथा समदर्शिता का दिव्यभाव भी रखते हैं। वे भारतमाता के सपूत संकीर्णताओं से ऊपर उठकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के उद्घोषक होते हैं। वे अभाव और उल्बणता की पीड़ा को जानकर ही इनमें फँसे हुए व्यक्ति अथवा समाज का अभ्युदय करने के लिए आतुर रहते हैं। यही आतुरता उनके अवतरण की भविष्णु भूमिका होती है।

प्रस्तुत 'कुब्जापत्रम्' के प्रणेता पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज ऐसे ही महापुरुषों में मूर्धन्य हैं जिन्होंने विकलांगता के कालकूट को स्वयं पिया है। ये कुटज पुष्प की भाँति खिलकर कठोरतम परिस्थितियों को विदीर्ण करके विकलांगों के सर्वविधकल्याण के लिए तथा उनको आत्मनिर्भर एवं स्वाभिमानी बनाने के लिए अपनी सन्तोचित करुणा विकीर्ण करने में दत्तचित्त हैं। संस्कृत साहित्य में पत्रकाव्य की नवीन विधा का प्रणयन करके पूज्य जगद्गुरु जी ने विकलांगता से त्रस्त कुब्जा साध्वी की मनोव्यथा का नई उद्भावनाओं के साथ मार्मिक चित्रण किया है। आठ सखियों तथा श्रीराधाजी को सम्बोधित करके सुन्दर पृष्ठों में बारह बारह श्लोकों तथा नौ विभिन्न वृत्तों में कुब्जा ने अपनी दयनीय दशा का चित्रांकन किया है। काव्य को उत्कर्ष तथा प्रभविष्णुता प्रदान करने वाले पद, वाक्य, गुण, अलंकार, रस सहित उन अनेक उपादानों का भी इस काव्य में सुन्दर गुम्फन किया गया है जो अपने औचित्य से सहृदय

एवं सुधी पाठकों को काव्यानन्द प्रदान करेंगे। यह काव्य कलेवर में लघु होते हुए भी अपने अर्थगौरव तथा भावमकरन्द के कारण 'गुरुता एवं अद्वितीयता' रखने का अद्भुत सामर्थ्य रखता है। साथ ही पूज्य आचार्यश्री को यही लघुता लघु अर्थात् अभीष्ट भी है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह 'कुब्जापत्रम्' काव्यरसपिपासुओं को काव्यानन्द, भगवद्भक्तों को भजनानन्द और विकलांग बहिन-भाइयों को स्वाभिमानानन्द देकर पूज्य जगद्गुरु जी के अदूष्य वैदुष्य और करुणाकादम्बिनी का भी पर्याप्त प्रबोध कराएगा।

इस नवीन काव्यविधा वाटिका के प्रथम पुष्प को प्रकाशित करने का गौरव जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उ०प्र०) को इसी जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट के जीवनपर्यन्त कुलाधिपति पूज्यपाद श्रीराघवीयो जगद्गुरु रामभद्राचार्य जी महाराज ने प्रदान किया। एतदर्थ विश्वविद्यालय परिवार उनकी इस अहैतुकी वदान्यता का सश्रद्ध सतत अभिनन्दन करता रहेगा।

प्रस्तुत पुस्तक के मुद्रण की सेवा पूज्य जगद्गुरु जी के अत्यन्त वात्सल्यभाजन, संस्कृतसेवानिष्ठ एवं परम विद्वान् श्री शिवाकान्त द्विवेदी जी (उपजिलाधिकारी बुलन्दशहर, उ०प्र०) के द्वारा सम्पन्न हुई है। इसके लिए विश्वविद्यालय श्री द्विवेदी जी की सहृदयता एवं उदारता के प्रति सादर आभार व्यक्त करता है।

इति प्रकाशकीय प्रस्तौति

डा० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील'

गाजियाबाद

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

कुब्जापत्रम् (पत्रकाव्यम्)

अथ ललितासखी सम्बोधनाभिधानम् मन्दाक्रान्ता वृत्तनिबद्धं प्रथम पृष्ठम्

काचित् कान्ताः कुवलयदृशः कान्तविश्लेषवह्नि-
ज्वालालीढा दृगसितजलैर्हृद्भवानार्द्रयन्तीः।
वृन्दारण्ये व्युषिततुलसी धर्मिकाः पूर्वकुब्जा
सम्बोध्य स्वं व्यलिखदनघं पत्रमाक्रोशमाणाः।।१।।

माधवी हिन्दी टीका— मंगलाचरणम्

सीतारामौ प्रणम्याऽथ राधाकृष्णौ गुरूंस्तथा।
तनोमि माधवीं टीकां कुब्जापत्रे स्वनिर्मिते।।
सुखावबुद्ध्यै छात्राणां जनतायाः सतां मुदे।
पत्रकाव्यमिदं हिन्द्यां व्याचक्षे स्वकृतं सुखम्।।

माधवी टीका—भगवान् श्रीराधागोविन्द की पतिपावनी कृपा से संस्कृत साहित्य में सर्वप्रथम भगवदीय पत्रकाव्य लिखने की मुझे अपने सप्तम अनुष्ठान के तृतीय मास के आरम्भ में अन्तःप्रेरणा हुई और प्रभु की कृपा ने ही इसे शीघ्रातिशीघ्र सम्पन्न भी करवा लिया। मैंने अपने साधनाकाल में कुब्जा और गोपियों के सम्बन्ध में जो अनुभूतियाँ कीं, वे ही इस पत्रकाव्य के माध्यम से प्रस्फुटित हुई हैं। कुब्जा ने राधाजी

की आठ सखियों एवं राधाजी को सम्बोधित करके नवपृष्ठों में अपनी परिस्थितियों को स्पष्ट करते हुए पत्र लिखा। प्रत्येक पृष्ठ में बारह-बारह श्लोक हैं तथा प्रत्येक पृष्ठ किसी न किसी विशिष्ट छन्द में निबद्ध है। सम्बोधनानुसार क्रम से सम्बोध्यमान सखी का नाम और वृत्त का भी नाम मुद्रालंकार से संकेतित है। अब हम यथासम्भव सरल भाषा में इस ग्रन्थ का भावानुवाद प्रस्तुत करते हैं।

प्रथम पृष्ठ में राधाजी की प्रिय सखी ललिताजी को सम्बोधित करते हुए मन्दाक्रान्ता छन्द में कुब्जा अपनी मनोभावनाओं का चित्रण करती हुई लिख रही है–

अपने प्राणाराध्य प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण की विरहाग्नि से झुलसी हुई, अपने नेत्रों के काजल से मिले हुए जलप्रवाहों से वक्ष को गीला करती हुई, शालग्राम से बिछुड़ी हुई तुलसी की भाँति निरीह, श्री वृन्दावन में प्रभु के बिना व्याकुल होकर कुब्जा के प्रति आक्रोशपूर्वक आक्षेप भरे वाक्य बोलती हुई नीलकमल नेत्र वाली गोपियों को संबोधित करके कोई श्रीकृष्ण की विशेष कृपापात्र पूर्वकाल में कुब्जा किन्तु पत्रलेखन के समय श्रीकृष्ण द्वारा दिव्यरूप सम्पन्न की गई सैरन्ध्री ने अपनी स्पष्टता करते हुए नव पृष्ठों वाला ऐसा निष्पाप पत्र लिखा, जिसमें उसने श्रीकृष्ण के साथ स्वयं के सम्बन्ध को पूर्ण निर्दोष एवं उपासनामय तथा निर्मल सिद्ध किया है।

स्वस्तिश्रीमन्मधुरमुरलीवादनाराधनायै
स्वस्ति श्रीशा द्रुहिणगृहिणी पूजिताम्भोरूहाङ्घ्रै।
स्वस्ति स्वेभ्यो हरिपदरसं रासरम्यं प्ररान्यै
स्वस्ति श्यामाननविधुरुचो राधिकाराधिकायै।।२।।

माधवी टीका—पत्राचार की शिष्टता का निर्वहण करती हुई कुब्जा श्रीराधा एवं उनकी परम अन्तरंग सखी ललिता जी के प्रति आदरभाव व्यक्त करती हुई लिखती है। अनन्त शोभासम्पन्न मधुरमुरली वादन में प्रवीण श्रीकृष्ण की परम आराधिका ललिता सखी का परम कल्याण हो। लक्ष्मी, पार्वती एवं ब्रह्माणी द्वारा जिनके श्रीचरणकमल की पूजा की गई है, ऐसी वृषभानुनन्दिनी की जय हो। आत्मीयजनों को रासलीला से रमणीय भगवच्चरण प्रेमरस प्रदान करने वाली तथा भगवान् श्रीश्यामसुन्दर के मुखचन्द्र की आराधक आप श्रीराधारानी का मंगल हो, मंगल हो।

वन्दे वन्द्यां विधिहरिहरैर्वन्दिताम्भोजपादां
श्रद्धाशीलां मनसि ललितां कृष्णभावं दधानाम्।
कर्तं कर्तं प्रकृतिकठिनाः श्रृंखला गेहिनीनाम्
या वै भेजे व्रजवरवधूतल्लजा माधवाङ्घ्रिम्।।३।।

माधवी टीका—जिन ब्रजांगनाशिरोमणि ललिता जी ने गृहस्थ महिलाओं की स्वभाव से कठिन ममता की बेड़ियों को भगवत्तत्त्व ज्ञान की तलवार से काटकाटकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के श्रीचरणारविन्दों का भजन किया। अपने मन में कृष्णभाव को पोषित करती हुई उन्हीं वैदिक आस्था की केन्द्रभूत ब्रह्मा, विष्णु, शंकर द्वारा वंदित चरणकमल वाली वन्दनीया श्रीकृष्णरस की परमाचार्या श्रीललिता सखी को मैं वंदन करती हूँ।

का त्वं शुभ्रूर्महितमहिता देशिका प्रेममार्गे
क्वाहं कुब्जा विकलिततनुस्तप्तसत्वाल्पसत्वा।

जानानाऽपि प्रकृतिविवशात्पत्रमेतद् ददेते
अत्याचारे हि निरतिशये धैर्यधुर्योऽप्यधैर्यः।।४।।

माधवी टीका—कुब्जा अपनी विवशता प्रकट करती हुई कहती है, हे ललिता जी! कहाँ तो परमपूज्य रसिक सन्तों की भी पूजनीय प्रेममार्ग की आचार्या, आपश्री ललिता सखी और कहाँ मैं विकलांग, सन्तप्त अन्तःकरण वाली, अल्पभाग्या कुब्जा एक निरीह महिला। मेरी आपसे कभी तुलना हो ही नहीं सकती। यह विसंगति जानती हुई भी मैं अपनी स्वाभाविक विवशता के कारण आपश्री को यह पत्र दे रही हूँ। क्योंकि अधिक अत्याचार हो जाने पर धीरधुरीण भी अपने धैर्य को खो देता है। अर्थात् जब अत्याचार सहन सीमा को पार कर लेता है, तब गम्भीर व्यक्ति भी मुखर हो उठता है।

श्रावं श्रावं मधुपगदिता युष्मदीया दुरुक्ती-
र्लावं लावं प्रकृतिसुलभं स्वीयलज्जाप्ररोहम्।
द्रावं द्रावं जतुमयमहो तप्तचित्तं पुरश्च्यो
भावं भावं भवहरहरिं पत्रमेतल्लिखामि।।५।।

माधवी टीका—हे ब्रजसीमन्तिनी शिरोमणि श्रीललिता सखीजी! ब्रज से श्रीमथुरा लौटे हुए भ्रमर द्वारा आप लोगों की अनुचित उक्तियाँ सुन सुनकर अन्ततः विवशता के कारण नारी जनोचित लज्जालता के पौधे को काट काटकर अर्थात् सभी संकोचों को छोड़कर आप लोगों के अपमान की आग से तप्तचित्त को लाख की भाँति पिघला पिघलाकर, भवभयहारी भगवान् श्रीकृष्ण के लोकमंगलकारी व्यक्तित्व की बारंबार भावना करके मैं प्रत्युत्तर के रूप में यह पत्र लिख रही हूँ।

क्वाऽसौ श्यामस्त्रिभुवनगुरुश्चेतसामप्यगम्यः
क्वाऽयं कामः पतितपतितो गोघ्नसम्राट् च दस्युः।
कामश्यामे कथमिह पदं धातुमेवोत्सहेत
प्रत्यूषार्के कथयत कथं शर्वरीकूटजालम्।।६।।

माधवी टीका—हे ललिता सखी जी! तनिक विचार तो कीजिए। कहाँ योगी जनों के चित्तों के लिए भी अगम्य, तीनों लोकों के पिता योगीश्वरों के भी ईश्वर, भगवान् श्रीकृष्ण और कहाँ अत्यन्त पतित कसाइयों का सम्राट्, दस्युशिरोमणि काम। भला आप लोग ही बताएँ परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्र जी के हृदय में यह घृणित काम पाँव रखने का भी उत्साह कर सकेगा? क्या प्रातः सूर्य में रात्रि का छद्म जाल सम्भव है? अर्थात् जैसे दिन से रात्रि का सामञ्जस्य नहीं उसी प्रकार श्याम से काम का समन्वय हो ही नहीं सकता!

योऽसौ युष्मन्नयनविशिखै र्नैव विद्धः कदाचिद्—
रासक्रीडापरिकरविधौ योऽच्युतो ब्रह्मचारी।
सोऽयं कृष्णः कमलनयनो धूर्जटेः पूज्यपादः
कामावेशं कलयति कथं किं शशी स्याद्धुताशः।।७।।

माधवी टीका—हे ललिता सखी जी! जो व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण! आप लोगों जैसी परम सुन्दरी व्रजांगनाओं के नयन बाणों से कभी नहीं बिंधे, अर्थात् आप लोगों की चेष्टाएँ जिन्हें कभी घायल नहीं कर सकीं, और जो योगेश्वर श्रीकृष्ण महारासलीला के समय आप लोगों के मध्य रहकर भी च्युत नहीं हुए और अखण्ड ब्रह्मचारी बने रहे। वही ये भगवान् शंकर के लिए भी पूज्यचरण कमल नेत्र श्रीकृष्ण भला अपने मन में कभी भी तुच्छ काम का आवेश धारण कर सकेंगे? क्या

कभी भी चन्द्रमा अग्नि बन सकता है?

सूरः शूरो रसपतिकथा व्योमवीथी विहारे
रामाख्यानेऽनुपमकविता कौशलो हौलसेयः।
नन्दो नान्दौ ललितरचनागाथकः स्वानुभूत्या
जानीते मां गिरिधरकविस्तद्गिरा वो ब्रवीमि।।८।।

माधवी टीका—हे ललिते! और तो और मुझे प्रायशः पूर्ववर्ती महाकवियों ने न्याय नहीं दिया। सूरसागर के रचयिता दिव्यचक्षु महाकवि सूरदास केवल शृंगार रस की कथाओं के आकाश की गलियों के विहार में ही शूरवीर हैं, अर्थात् उनका, विकलांग दीन हीन दुखियों की संवेदना से कोई लेना देना नहीं है, इसलिए सूरदास जी द्वारा अपने तीनों भ्रमर गीतों में मेरे प्रति किए हुए आक्षेप और मुझ पर लगाए हुए आरोप पूर्णतः निराधार और प्रमाणशून्य हैं।

इसी प्रकार श्रीरामचरितमानस के रचयिता हुलसीहर्षवर्धन श्रीतुलसीदास महाराज का काव्य कौशल भगवान् श्रीराम के कथावर्णन में अनुपमेय स्थान रखता है। फलतः उन्हें श्रीसीतारामजी के नाम रूप, लीला, धाम में अहर्निश तन्मय रहने के कारण मेरे सम्बन्ध में गम्भीरता से सोचने का समय ही नहीं मिल पाया। अतः कृष्णगीतावली में तुलसीदास जी ने मेरे लिए जो कुछ कहा वह केवल गोपियों की एकपक्षीय सुनवाई करके द्रवित हुए सन्त के निश्छल हृदय का परिणमन था। नन्ददास जी तो केवल हवेली संगीत के प्रस्ताव में कुशल कहे जाते हैं, अतः उनके भ्रमर गीत का तो प्रामाणिकता की कोटि में आने का प्रश्न ही नहीं, इसलिए मेरे सम्बन्ध में अपनी परिस्थितियों की सहायता से प्रामाणिकता को प्राप्त हुई स्वयं की अनुभूति के आधार

पर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामीरामभद्राचार्य गिरिधर कवि ही मुझे ठीक-ठीक जानते हैं, इसलिए हे ललिता सखी! उन्हीं महाकवि स्वामीरामभद्राचार्य गिरिधर की ही वाणी से अपनी मनोव्यथाएँ आप लोगों के समीप पहुँचाने का प्रयास कर रही हूँ और उन्हीं की वाणी में कुछ बोल रही हूँ।

वाराहश्रीदशनशशिनि प्रापिता लक्ष्मलक्ष्मीं
त्रिःपादाम्भोरुहसुरजसा वामने नाञ्चिताऽहम्।
भूत्वाप्येषा भुवनजननी जानकी मान्यमाता
कुः कुब्जाभूवमहमनघा हा! विधे मे विपाकः।।९।।

माधवी टीका—श्री ललिता सखी जी! भला मेरी विडम्बना तो देखिए मैंने नारायण के सर्वप्रथमावतार भगवान् वाराह के दशनरूप चन्द्रमा में कालिमा की शोभा प्राप्त की, अर्थात् वाराह अवतार में प्रभु ने मुझे अपने दशनप्रान्त में स्थापित किया और वामनावतार में भगवान् त्रिविक्रम की चरणारविन्द की धूलि में से मैं तीन बार अलंकृत हुई, अर्थात् भगवान् वामन ने मुझ पर तीन बार चरण रखे। किं बहुना श्रीरामावतार में जगज्जननी सीता जी की माँ बनने का सौभाग्य प्राप्त करके भी मैं (पृथ्वी) निष्पाप होने पर भी कृष्णावतार में कुब्जा बनी। हा! ब्रह्मा मेरे कुकृत्यों का यही परिणाम!

विशेष—पुराणों की मान्यता के अनुसार कृष्णावतार में पृथ्वी ही कुब्जा बनी, और यह तीन अंगों से टेढ़ी हुई। मथुरागमन के प्रथम चरण में भगवान् श्रीकृष्ण ने इसका उद्धार किया। इस श्लोक में प्रयुक्त कु शब्द पृथिवी वाचक है।

जाताज्ञाते मनुजमिथुने क्लिष्टकान्तालकान्ता
मन्दाक्रान्ता कुचकुथितकुः कुब्जकान्ता विकान्ता।
कम्रा नम्रा चिकुरकबरीभारभग्नां सकान्ता
श्रान्ता क्लान्ता शुचिसरिदिव स्वल्पकान्तामुकान्ता।।१०।।

माधवी टीका—अब कुब्जा अपनी परिस्थिति का वर्णन करती है—हे ललिते! आप मेरी परिस्थितियों का आकलन तो कीजिए। मैं उन माता पिता के यहाँ उत्पन्न हुई, जिनकी वंश परम्परा सर्वथा अज्ञात है। मेरे बाल सुन्दर होते हुए भी अव्यवस्था के कारण बिखर गए। कूबड़ निकलने के कारण मैं मन्दाक्रान्ता अर्थात् बहुत मन्द गति से चलती हूँ। मैं इतनी झुक गई हूँ कि मेरे वक्षोज पृथ्वी के स्तरण के समान हो गए हैं। मेरे कटि प्रदेश में कुब्ज अर्थात् कूबड़ है। मैं दुःख की सीमा बन गई। सुन्दर होने पर भी अपने केश के जूड़े के भार से मेरे कन्धे टूट गए, इसलिए मैं बहुत झुक गई। मैं उसी प्रकार तन और मन दोनों से थक गई हूँ जैसे थोड़े जल वाली आषाढ़ की नदी अनुकम्पनीय हो गई हो।

क्रीडारङ्गे रसिकललिते दत्तलत्ताभिघाता
व्रीडाभङ्गे ललितललनालब्धवाक्येषुजाला।
पीडासङ्गे निजपरिजनैः सर्वथा ताप्यमाना
हा हत्वोरो रुदितकुररीवृन्दरोदं रुरोद।।११।।

माधवी टीका—ललिता जी! आप मेरी विडम्बना तो देखें। क्रीडा के रंगमंचों पर मुझे सकलांग कन्याएँ लातों से मारकर ठुकराती थीं, और मेरी शारीरिक परवशता के कारण लज्जा के भङ्ग हो जाने पर श्रेष्ठ नारियाँ मुझे वाणी के वाणों से विद्ध कर देती थीं, और शारीरिक

पीड़ा होने पर जब मैं अपने परिवार के मनोनुकूल अपने कार्य नहीं कर पाती थी, तो मेरे ही परिजन सब प्रकार से सताया करते थे। इस प्रकार विपत्ति की मारी मैं छाती पीट-पीटकर कुररी पक्षी की भाँति करुण स्वर में बहुत रोया करती थी।

उच्छिष्टान्नं रसितरसकं यातयामं तथामं
भुञ्जाना पर्युषितमबला पूतिपूतैरभक्ष्यम्।
दर्शं दर्शं जगदिदमहो निष्ठुरं वैकलाङ्गे
भावं भावं भवभयमहं दीर्घकालं निनाय।।१२।।

माधवी टीका—हे ललिता सखी जी! जिसे भद्रलोग नहीं खा सकते, ऐसे रसहीन, तीन घंटे पहले बनाए हुए बासी, दुर्गन्धपूर्ण कच्चे पदार्थ का भोजन करके किसी प्रकार पेट भरती हुई तथा विकलांग के प्रति संसार को अत्यन्त निष्ठुर देखकर भी अहो! इस भीषण संसार का बारम्बार चिन्तन करके मैंने इसी परिस्थिति में रहते हुए सुदीर्घ समय बिता डाला।

इति धर्मचक्रवर्तिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु-रामानन्दाचार्य महाकवि स्वामिश्रीरामभद्राचार्यगिरिधरकृतौ कुब्जापत्रे ललितासखीसम्बोधनाभिधानं प्रथमपृष्ठम्।।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु।

अथ विशाखासम्बोधनाभिधानं शिखरिणी वृत्तनिबद्धम्
द्वितीय पृष्ठम्

समुत्पन्नान्यूने मनुजयुगलेऽज्ञातसुकुले
कृतादासी दासीकृतकुपतिना भोजपतिना।
विषण्णा विक्षुण्ण प्रकृति विकलाङ्गी च विपदा
भवं भावं भावं भवभवमभावं समभवम्।।१।।

माधवी टीका—अब कुब्जा विशाखा सखी को सम्बोधित करके शिखरिणी वृत्त में पत्र का दूसरा पृष्ठ प्रारम्भ करती है। हे विशाखा सखी जी! भगवान् श्रीकृष्ण मेरी विडम्बना पर द्रवित हुए न कि मेरी सुन्दरता पर। मैं, जिसकी कुल परम्परा का ज्ञान नहीं ऐसे निम्न श्रेणी में रहने वाले माता-पिता के यहाँ जन्मी, संसार के समस्त राजाओं को अपने अधीन करने वाले भोजराज कंस द्वारा दासी बनाई गई। स्वभाव से विकलांग होती हुई विपदा की मारी दुःखियारी मैं कुब्जा संसार के अभाव का एवं अपने प्राणबल्लभ के रूप में श्रीकृष्ण का चिन्तन करती हुई अत्यन्त दुःखी रहने लगी। क्योंकि प्रतीक्षा मुझसे सही नहीं जा रही थी।

क्वचिन्नम्रानम्रस्तनलुठितवाराहवर्णी
रजोराशी राशी रहसि रभसः शोकतमसोः।
मुहुर्मारं मारं व्रजपतिकुमारैकविषयं
स्मरं स्मारं स्मारं मधुपमहमासं समुदिता।।२।।

माधवी टीका—कभी-कभी एकान्त में झुके हुए वक्षोजों के लुण्ठन से

भगवान् वाराह की धर्मपत्नी पृथ्वी की धूल की राशि से युक्त होकर शोक और अन्धकार की राशिरूप मैं भगवान् श्रीकृष्ण की प्राप्ति को असम्भव जानकर ब्रजेन्द्रनन्दन विषयक मिलन की इच्छा को अपने मन में मार-मारकर पुनः उनके मथुरा आगमन की सम्भावना से प्रसन्न हुई मैं मथुरानाथ का बारम्बार स्मरण करके दण्डवत् की मुद्रा में पृथ्वी में झुक जाया करती थी।

क्वचित् क्रन्दं क्रन्दं स्वनियतिमनिन्दं कृपणधीः
क्वचिद् वन्दं वन्दं श्रुतिवदनमानन्दमनघा।
क्वचिच्चन्दं चन्दं करमुदवहं चन्दनचणम्
क्वचिद् विन्दं विन्दं विदुरविधुमार्चं हृदजिरे।।३।।

माधवी टीका—हे विशाखा सखी जी! कभी कभी मैं अभागिनी रो रोकर अपने भाग्य को कोसती तो कभी कभी अपने भावी सौभाग्य का चिन्तन कर निष्पाप भाव से ब्रह्मा जी को वन्दन कर करके प्रसन्न हो उठती थी। कभी-कभी भगवान् श्रीकृष्ण के मिलन का पूर्ण निश्चय करके अपने ध्यान में पधारे हुए मथुराविहारी सरकार को चन्दन लगाने के लिए उस क्रिया में कुशल अपना हाथ ऊपर कर लेती, तो कभी कभी विदुर जी की कुटियारूप नभोमण्डल के चन्द्रमा, प्राणाधार श्रीकृष्ण को प्राप्त करके अपने हृदय के आँगन में उनका भावुक समर्चन कर लेती थी।

निराधाराधाराधरवलितवेलेव कुदिना
निराहाराहारा परिचरितखेलेव कुजना।
निरालम्बा लम्बायितहलितहेलेव कुमना
निरानन्दानन्दाजिरचलितदोलेव कुधना।।४।।

माधवी टीका—मैं आधारहीन होकर उस दुर्दिन वाली वर्षा वेला के समान हो गई जिसमें संकट के बादल छाए हुए थे। मुझे भोजन नहीं प्राप्त हो रहा था, मैं विजय की माला से बहुत दूर पराजित व्यक्ति की क्रीड़ा के समान दुष्टजनों से घिर गई थी। मैं आधारहीन होकर खिन्न मन वाली उस अपमान की परिस्थिति के समान थी जिसका समाधान बहुत विलम्बित था और मैं आनन्दहीन होकर कृष्ण के वियोग काल में नन्दराय के आँगन की झूले की सेज की भाँति कृष्णरूप धन से शून्य थी।

क्वचित् खट्वारुढैर्धनबलविरोढोद्धतमद—
द्रुमव्यूढैर्मूढैरहमिति समारुढमतिभिः।
मधून्मत्तैर्लत्तानिहतकटिकुब्जा कुवलया—
म्बकापैरासिञ्चं कुवलयदृगं हः कुवलयम्।।५।।

माधवी टीका—हे विशाखा सखी! कभी कभी धनबल के मदरूप उद्धत वृक्ष से ढके हुए मैं ही सब कुछ हूँ इस प्रकार की कुबुद्धि से युक्त मूढ मदोन्मत्त चारपाइयों पर बैठे हुए विलासी सामन्तों द्वारा लात से मारी हुई मैं अपनी नीली अश्रुधारा से नारियों की विपत्ति को ही अपने हाथ का कंकड़ समझने वाले अर्थात् महिलाओं के उद्धारक प्रभु श्रीकृष्ण को ही नहला देती थी। अर्थात् जब मदिरा के नशे में चूर कंस के सेवक मेरे कूबड़ पर लात मारते तब मैं काजल से नीली अश्रुधारा से ध्यान में प्राप्त भगवान श्रीकृष्ण को ही स्नान करा देती थी।

समाजेऽसंम्राजो जनितजनताजातकरुजां
जघन्या चाधन्या समभवममान्या शिखरिणी।

शुनीवाहं शून्या स्वविभवभवाभ्यां परिभवै–
रनाहाराहारानिललुलितशाखेव लतिका।।६।।

माधवी टीका–असभ्य राजा कंस के समाज में जनता के लिए रोग स्वरूप उत्पीड़क राज्य के कर्मचारियों के बीच मैं अत्यन्त निम्नश्रेणी की महिला अभागिनी एवं कर्मनाशा नदी के समान असम्माननीय हो गई थी। आत्मीयों के विभव तथा कल्याण से रहित हुई श्वानवधू की भाँति अपमानित होती हुई निराहार रहकर, हारादि अलंकारों से शून्य वायु से झकझोरी हुई लता के समान ही मैं सामाजिक व्यवस्था से झकझोर डाली गई।

दयापेक्षा प्रेक्षा रसवशजनानां कुमतिभिः
कृतोपेक्षाभिक्षान्धसि सुखसमीक्षेव विधना।
प्रतीक्षा सद्दीक्षा कृतजनपरीक्षा विकलधीरस्
तितीक्षैका शिक्षां प्रतिपदमशिक्षिष्यहमहो।।७।।

माधवी टीका–मैं दर्शकों की दयापूर्ण दृष्टि का पात्र बन गई थी तथा दुष्ट लोग मेरी उपेक्षा कर रहे थे और विधाता की इच्छा से मैं भिक्षा के भोजन में ही सुख की समीक्षा जैसी कर लेती थी। प्रभु की प्रतीक्षा ही मेरी सद्दीक्षा (श्रेष्ठ दीक्षा) थी। मेरी बुद्धि व्याकुल थी। मैंने संसार वालों की परीक्षा कर ली थी, और अब तो पग–पग पर मुझे तितीक्षा की ही शिक्षा दी जा रही थी अर्थात् लोग मुझे दण्ड देते थे और मुझसे सहन करने की अपेक्षा रखते थे।

हसन्त्यप्यन्तस्तः क्वचिदथमिशाश्रुः समरुदम्
रुदन्त्यद्धा स्वान्ते क्वचिदहसि शं मोघमुदिता।?

क्वचित् खिन्ना हर्षे क्वचिदमुदिसन्दर्शितसुखा–
दधे चेटीचेष्टामहह विकलाङ्गी विवशता।।८।।

माधवी टीका–विशाखा सखी जी! विकलांग जन की एक परवशता तो देखिए कभी तो मैं अन्दर से हँसती हुई भी बाहर से झूठे आँसू निकालकर रोती थी और कभी भीतर से रोती हुई भी झूठी प्रसन्नता व्यक्त करके मैं लोगों के समक्ष हँसती थी। कभी मुझे प्रसन्नता में भी खिन्न होना पड़ता था, कभी दुःख में भी मुझे सुख का प्रदर्शन करना पड़ता था। मैं नाटक में प्रयुक्त चेटी पात्र की सभी चेष्टाएँ कर रही थी। अहो! विकलांग की कितनी विवशता होती है अर्थात् मेरे जीवन में भीतर कुछ था परन्तु विवशता के कारण बाहर कुछ और करना पड़ता था।

क्वचित् सोमं सौम्याप्यनुपदमनिन्दं विवशवाक्
प्रकामं प्राशंसं क्वचिदिव विषं वृश्चिकसुता।
क्वचिद् गामाक्रोशं क्वचिदभजमार्ता खरवधूम्
मनोनिघ्नन् निघ्नः किमिह विकलाङ्गो न सहते।।९।।

माधवी टीका–हे विशाखे! मेरी सामाजिक पराधीनता पर विचार तो करो। कभी तो अपनी वाणी की विवशता के कारण मैं सौम्य मन से सोम अर्थात् चन्द्रमा की निंदा करती थी और कभी बिच्छू की भाँति विष की मैं पूर्णतया प्रशंसा करती थी। कभी मैं गौ को गाली देती थी, और गधी की सेवा करती थी। अरे इस संसार में अपने मन को मारता हुआ दूसरों के अधीन यह बेचारा विकलाङ्ग क्या क्या नहीं सहन करता।

सुमङ्गल्ये कल्ये कलितकुलकौशल्यसमये
विवाहे सोत्साहे धृतरसविवाहे शुभमहे।
अमङ्गल्याकारां धृततनुविकारां सपदि मां
बलां निन्युर्दूरादहह विकलाङ्गस्य विपदः।।१०।।

माधवी टीका—विशाखे! मंगलमय प्रातःकाल की वेला में तथा कुल की कुशलता के सुन्दर प्रसंगों में उत्साहपूर्ण विवाह के समय रस प्रवाह से युक्त अन्य सुन्दर महोत्सवों में शरीर के कूबड़ के कारण अमंगला और अपशकुन के आकार से युक्त जानकर लोग मुझे इन सुन्दर स्थलों से बलपूर्वक घसीटकर दूर फेंक देते थे। अरे! विकलांगों की कैसी भयावह विपत्तियां कि सकलांग जनों के उत्सवों में विकलांग की उपस्थिति अपशकुन मानी जाने लगी है।

सदा दृष्टो ग्रीष्मः क्वचिदपि न वर्षासुखमभूत्
विषं पीतं नित्यं क्वचिदपि सुधानैव रसिता।
न चाप्तं सम्मानं सततमपमानं तनुभृताम्
विशाखेवाभूवं खरपवननुन्नामरलता।।११।।

माधवी टीका—हे विशाखा सखी जी! मैंने अपने जीवन में केवल ग्रीष्म ही देखा। कभी भी वर्षा सुख का अनुभव नहीं किया। मैंने निरन्तर विष ही पीया कभी भी अमृत का स्वाद नहीं चखा। मैंने कभी लोगों का सम्मान नहीं पाया, प्रत्युत समाज का अपमान ही झेला। वस्तुतः मैं वह एक लता हूँ जिसमें न शाखा है और जो वायु के झंझा झकोरों से झकझोर दी गई है।

प्रभातं नो जातं नियति वियति श्यामरजनी
विपत्पारावारः प्रतिपदमपारः प्रकटितः।
प्रतीपं मे सर्वं परिकलितखर्वप्रतिभयम्
ह्यसारे संसारे किमिह विकलांगो न सहते।।१२।।

माधवी टीका—हे विशाखे! मेरे जीवन में कभी भी प्रातःकाल आया ही नहीं। प्रत्युत मेरे भाग्याकाश में अंधेरी रात ही रही। मेरे जीवन के पग-पग पर विपत्ति का महासागर ही लहराया। वस्तुतः अत्यन्त क्षुद्र भय एवं प्रतिकूलता ही मेरे जीवन में सर्वत्र बनी रही। इस असार संसार में विकलांग क्या क्या नहीं सहन करता।

इति धर्मचक्रवर्तिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु-रामानन्दाचार्य महाकवि स्वामिश्रीरामभद्राचार्यगिरिधरकृतौ कुब्जापत्रे विशाखासखीसम्बोधनाभिधानं द्वितीयपृष्ठम्।।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु।

अथ चित्रासम्बोधनाभिधानं स्रग्धरावृत्तनिबद्धम्
तृतीय पृष्ठम्

संसारेऽपास्तसारे सरिदिव च शुचौ श्यामले श्यामपक्षा
कासारेऽकेवकारे भवभवभवनश्रेयसी स्रग्धराक्षा।
कान्तारे काऽपि कान्तस्मरणमृतिमहाहापितेवाधिकक्षा
कंसारेः कैश्च कांक्षाव्रततिरिव वृता काञ्चनी काचनासम्।।१।।

माधवी टीका—अब कुब्जा चित्रा सखी को सम्बोधित करती हुई स्रग्धरावृत्त में तृतीय पृष्ठ का प्रारम्भ करती है।

हे चित्रे! मैं आषाढ़ के कृष्णपक्ष में स्पर्श के अयोग्य नदी की भाँति कीचड़ से भरे हुए अल्प जलाशय में फँसी हुई सुखहीन महिला की भाँति वियोगी पति के स्मरण में मृत्यु को ही उत्सव समझने वाली घोर वन में भटकती हुई पतिपरित्यक्ता, शोक विकल नायिका की भाँति तथा किन्हीं भावों से घिरी हुई स्वर्णलता की भाँति तथा शिव के भी कल्याणकारक वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण के श्रेयोविधानकारिणी आकांक्षा की भाँति श्रीकृष्ण के पक्ष का आश्रय करके अपनी आँखों में प्रभु प्रेमाश्रु की माला संजोए हुए इस असार संसार में एक अकेली ही साधिका थी।

सत्यास्तित्वाक्षहीनां विगलितविभवां निष्क्रियां मामिकां गाम्
सत्यास्ति त्वाक्षहीनां विगलितविभवां निष्क्रियां मामिकां गाम्।
सत्यास्ति त्वाक्षहीनां विगलितविभवां निष्क्रियां मामिकां गाम्
गोपालो गा अनागा मम मरणभयाद् गीतगोपीरगोपीत्।।२।।

माधवी टीका—हे चित्रे! सत्य एवं अस्तित्व से रहित स्मृति वैभव से विहीन निष्क्रिय मेरी बुद्धि को तथा सत्यस्वरूप परमात्मा में आस्थारूप नेत्र से रहित विशेष कल्याण से दूर मेरी अकर्मण्य इन्द्रिय को तथा सत्य के अस्तित्वरूप नेत्र से रहित अर्थात् असत्य परायण एवं प्रभु के नाम रूप प्राणबल्लभ के गुणानुवाद से रहित भगवत्सम्बन्धी क्रियायोग का त्याग की हुई ऐसी मेरी वाणी को किंबहुना जिनके द्वारा गोपियों का गान किया गया है, ऐसी मेरी बुद्धि इन्द्रियवाणी रूप गौओं को निर्दोष गोपाल भगवान् श्रीकृष्ण ने मरण के भय से उबार लिया।

ना सत्या नाऽप्यसत्या निशि नलिनगते वालिनी मालिनी गौ
र्विभ्रष्टा शेषतारामलधवलरुचिर्भग्नसोचीरिव द्यौः।
राहुग्रस्तेव सस्ताखिलसुखसुषमामग्नभामाप्रिय ग्लौः
सीदामि स्माल्पभाग्या परिभवजलधौ वातनुन्नायथा नौः॥३॥

माधवी टीका—इस छन्द में अपनी कठिन परिस्थिति का वर्णन करती हुई कुब्जा कहती है—हे चित्रे! आप मेरी असमंजसपूर्ण मनोदशा पर विचार कीजिए। रात्रि में कमल कोष में बन्द भ्रमरी जैसी न सत्य और न असत्य का निर्णय करने वाली अर्थात् सत्य और असत्य इन दोनों के निर्णय में असमर्थ किंकर्तव्यविमूढ़ मलिन मनुष्य की बुद्धि की भाँति असामान्य परतन्त्रता का अनुभव करती हुई, जिससे तारागणों का निर्मल तथा धवल प्रकाश लुट चुका हो तथा जिसमें किसी भी प्रकार की कान्ति न हो, ऐसी आकाशी दिशा की भाँति अपना सब कुछ खो चुकी हुई, राहु द्वारा ग्रसी गई समस्त सुखों की शोभा से रहित तेजोहीन अपने प्यारे चन्द्रमा से भी बिछुड़ी हुई ऐसी पौर्णमासी तिथि की भाँति, वियोगिनी की करुण दशा झेलती हुई,

समुद्र में झंझावात से झकझोरी नौका जैसी मैं सकलांगों के अपमान महासागर में भाग्यहीन होकर लोगों द्वारा सतायी जाती हुई किसी प्रकार अपना समय काट रही थी।

गोपायन् गोप्यगोपीर्गविविबुधगवीगीतगाथाः स्वगाथा
गोप्स्यन् गोगोपबालान् बलभिदरिहरेर्गोत्रलीलातपत्रः।
गोपीथं संविधास्यन् द्विजदिविजसतां सर्ववर्णाश्रमाणाम्
गोप्ता धर्मस्य कुब्जां कुमति कुपतितो धर्मगोपं जुगोप।।४।।

माधवी टीका—जिनकी पृथ्वी पर संस्कृतभाषा में दिव्यगाथाएँ गायी गई हैं और स्वयं परमात्मा का गुणगान ही जिनकी गाथा है ऐसी गोपनीय गोपियों की रक्षा करते हुए हाथ में गोवर्धन धारण कर गौओं तथा गोप बालकों को वलदैत्य के हन्ता शत्रु बने हुए, इन्द्र से बचाते हुए, तथा ब्राह्मण देवता एवं सन्त और सम्पूर्ण वर्णाश्रमों की सम्यक् रक्षा करते हुए धर्म के रक्षक गोपाल श्रीकृष्ण ने मेरे धर्म की रक्षा करते हुए दुष्ट शासक कंस के अत्याचार से मुझ कुब्जा को बचा लिया।

मायावास्तीव्रधारे शरविषयझषे यातु यादोविसारे
संसारे पारपारे सततमलयुते रोगवीची विकारे।
पारावारे ह्यपारे सुजनभयकरे क्लृप्तहाहाप्रचारे
गोविन्दोऽविन्ददेनामतरणिमपि मां केशवः कर्णधारः।।५।।

माधवी टीका—हे चित्रे! हमारे प्रभु की अहैतुकी कृपा का अनुभव तो कीजिए जिसमें मायारुपिणी तीव्र जलधारा है। जो शर अर्थात् शब्दस्पर्शरूप रस गन्ध इस पाँच विषयरूप महामत्स्यों से युक्त है तथा जो मन की कुमनोरथरूप राक्षस जलजन्तुओं से घिरा हुआ है।

जिसका कोई पार नहीं, जो निरन्तर मानसिक तथा बाह्य दोषों के कारण बहुत ही तीक्ष्ण है। जिसमें शारीरिक तथा मानसिक रोग ही तरंग के समान हैं। ऐसे सज्जनों के लिए भयंकर इस अपार संसार सागर में बिना नाव के डूबती हुई, इस मुझ कुब्जा को देखकर श्रीकृष्ण ने कृपा करके स्वीकार लिया, क्योंकि भवसागर में डूबते हुए भक्त की नैया के कन्हैया ही तो खेवैया हैं।

मायामूलत्रिमूले दिशिदिशि विलसत् सर्वशूलत्रिशूले
शून्ये शून्ये जघन्ये निरवयवकृते सौख्यशून्येऽसदन्ये।
विद्यासस्यैककर्के कुविपदुदरके पापसम्पर्कतर्के
चित्रे संसारचित्रे यदिह मधुरता भासनं तत्ततस्त्यम्।।६।।

माधवी टीका—हे चित्रा सखी जी! आप इस संसार चित्र को तो देखिए। मायामूलक सत्व रजस् तथा तमस् ये तीनों गुण ही जिसके कारण हैं। सभी दिशाओं में फैले हुए भयंकर पीड़ा से युक्त आध्यात्मिक आधिभौतिक, आधिदैविक तीनों ताप ही जिसके त्रिशूल हैं और ऐसे शून्य किन्तु संसार के भोग पारायण कुत्तों की प्रवृत्ति वाले भोगवादियों के लिए हितैषी अवयवहीन अविद्या द्वारा बनाए हुए, सुख से रहित, असत् अविद्याप्रपञ्च रूप अतिरिक्त आधार अर्थात् चित्रपट्टिका से युक्त विद्यारूप सुन्दर फसल के लिए ओले के समान भयंकर दुःख के परिणाम से भरे हुए पाप के सम्पर्की कुतर्कों से युक्त इस संसार चित्र में जो कुछ मधुरता का आभास हो रहा है। वह भगवान् श्रीकृष्ण का ही है।

वंशी वंशी कुवंशी जनिरपि समभूद् यत्कराम्भोजहंसी
कांशी ध्वंसी खलानां य इह पदजुषां वृष्णिवंशी प्रसंशी।

राधाप्रेमैकशंसी प्रणतभयहरो भक्तभावप्रशंसी
किं मे बर्हावतंसी हरिरपि न भवेत् कुब्जिकायाः शरण्यः।।७।।

माधवी टीका—हे चित्रे! दुष्ट बाँस के अंश से उत्पन्न हुई भी वंशी जिसके करकमल की राजहंसिनी बनकर अमृत की भी मिठास को फीकी करने वाली बन गई तथा जो ब्रह्मा के भी अंशी दुष्टों के विनाशक, शरणागतों के प्रशंसक और वृष्णिवंशावतंस, राधाजी के प्रेम के एकमात्र गायक, प्रणतभक्तभयहारी और भक्तों के भावों की यथार्थ अनुशंसा करने वाले मयूरमुकुटी श्रीकृष्ण हैं, क्या वे श्रीहरि भी मुझ कुब्जा के शरणदाता नहीं बनेंगे?

वंशी हंसी विराजन् मृदुकरकमलान् मञ्जुमाधुर्यसीम्नः
सीमन्तोल्लासलीलाललितकरसरो जन्मनोऽजन्मजायाः।
दीनानाथादनाथावनविरुदविदो दोर्लतादानदक्षात्
कुब्जायाः कुब्जहर्तुः शरणमृतमृते कं वृजेन्दोर्व्रजेयम्।।८।।

माधवी टीका—वंशी राजहंसिनी द्वारा जिनके करकमल विराज रहे हैं। जो मञ्जुल माधुरी की सीमा है और जिनके कर कमल राधाजी के वेणी के संवारने में अत्यन्त ललित हैं। ऐसे दीन महिलाओं के नाथ तथा अनाथों के रक्षणरूप यश से सुशोभित एवं बाहुबन्ध के दान में निपुण तथा कुब्जा के कुब्ज को दूर करने वाले श्री व्रजचन्द्र कृष्णचन्द्र के अतिरिक्त मैं और किसे सत्यरूप से शरण स्वीकारूँ अर्थात् प्रभु के अतिरिक्त और किसको अपना वास्तविक रक्षक मानूँ।

बर्हापीडोऽघपीडः कलितकुवलयापीडपीडोऽरिपीडः
क्रीडाक्रीडाभिभग्नोद्भटविकटपटूत्खातभूकंसवंशः।

लीलालावण्यलक्ष्मीललकितललनोल्लासलक्ष्मीशलक्ष्मी–
र्मामावीन् माधवो मामहितमुरलिकामाधवी मन्मथाधेः।।९।।

माधवी टीका–मोरपंख का मुकुट धारण करने वाले पापहारी तथा अधासुर के शत्रु कुबलयापीड हाथी को पीड़ित करने वाले शत्रुहन्ता क्रीडारंगमञ्च पर उद्‌भट विकट वीरों का विनाश करने वाले कंस वंश को उखाड़ फेंकने वाले, लीला की सौन्दर्य सम्पत्ति द्वारा नारियों को लुब्ध करने वाले तथा श्री सम्पन्न लक्ष्मीपति नारायण को भी जिससे सुन्दरता प्राप्त हुई ऐसे योगशक्ति से सुशोभित मुरली एवं राधाजी के आश्रय भगवान् माधव ने मुझे काम की भीषण व्यथा से उबारकर भवभय से बचा लिया और अपना लिया।

श्रावं श्रावं सुनावं परिभवसरितो नारदाद्‌वर्हमौलेः
कीर्तिं कीर्तीष्टकन्याकुचकलशकलानैपुणीपुण्यपाणेः।
द्रावं द्रावं मनो मे जतुसुहृदनघं कृष्णरागैकभावम्
भावं भावं भवघ्नं क इह न दधते साधवो माधवौत्क्यम्।।१०।।

माधवी टीका–नारद जी के मुख से कीर्तिकुमारी की प्यारी पुत्री राधाजी के वक्षोज कलश पर चित्रपत्रक कला की कुशलता से पवित्र करकमल वाले मयूरमुकुटी श्रीकृष्णचन्द्र की अपमान रूप नदी की नौका स्वरूप, सुन्दर कीर्ति सुन सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण के भावों में रँगा हुआ मेरा मन पिघल पिघलकर लाक्षा का चित्र बन गया। अर्थात् लाख के समान पिघल गया। भला भवभयहारी भगवान् की भावना कर करके कौन साधुजन माधव के प्रति उत्सुक नहीं हो जाएँगे। अर्थात् प्रभु की भावना मात्र से प्रत्येक सज्जन व्यक्ति को प्रभु के श्रीदर्शनों की उत्सुकता हो ही जाती है।

क्वाऽहं निन्द्याऽनवद्यामृतचरितसतां तामसी तापतप्ता
क्वासौ हृद्योऽनवद्यो विरतिरतिमतां माननीयो मुकुन्दः।
अंगीचक्रे यदंगीकृतविमलमना मापतिर्मामनाथां
दीनानाथ त्वमेव स्वविशदविरुदं मण्डयामास शौरिः।।११।।

माधवी टीका—हे चित्रा सखी जी! कहाँ मैं निर्मल एवं अविनाशी चरित्र वाले सन्तों के लिए निन्दनीय तीनों तापों से तपी हुई तमोगुण प्रधान महिला, कहाँ वे हृदयहारी अनिन्दित गुणों से सम्पन्न विरक्त महात्माओं के भी पूजनीय मुक्ति तथा भुक्ति के दाता श्रीकृष्ण इतने पर भी यदि मेरे मन की निर्मलता देखकर लक्ष्मीपति प्रभु ने मुझे स्वीकार लिया तो इससे वसुदेवनन्दन प्रभु ने दीनानाथत्वरूप विरुद को ही मण्डित किया है।

नाऽहं योगाप्तदीक्षा न निगतनिगमा नाप्तवेदान्तशिक्षा
नो मीमांसा समीक्षा न विहितसुमनोभूमिभूमप्रतीक्षा।
नैवेक्षा सत्परीक्षा नहि गतदुरिता दूरतः सिद्धकक्षा
काक्षा स्वक्षा यदासं मतियुवतिलसत्कृष्णपक्षात्मपक्षा।।१२।।

माधवी टीका—हे चित्रा सखी जी! मैंने योग में कोई दीक्षा नहीं ली और न ही वेद का अध्ययन किया, न ही मैंने कभी वेदान्त का अभ्यास किया। न मैंने कभी भी मीमांसा की समीक्षा की और अपनी मनोभूमिका पर न तो कभी परमात्मा की प्रतीक्षा की। न मैंने कभी आत्मा का साक्षात्कार किया और न ही अपने सात्विक मन की परीक्षा की। न ही मेरे पाप समाप्त हुए वस्तुतः मैं सिद्धों की कक्षा से बहुत दूर हूँ। इतने पर भी यदि मैं परमेश्वर की दृष्टि में पवित्र इन्द्रिय सम्पन्न हूँ। और क अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण की अक्ष अर्थात् मुझ पर

कृपा दृष्टि है तो इसका एक ही कारण हो सकता है कि मेरी बुद्धिरूपी युवती ने श्रीकृष्ण के ही पक्ष को अपना पक्ष शोभापूर्वक मान लिया है। अर्थात् मैंने प्रभु की इच्छा से ही अपनी सारी इच्छाओं को आत्मसात् कर लिया है।

इति धर्मचक्रवर्तिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु-रामानन्दाचार्य महाकवि स्वामिश्रीरामभद्राचार्यगिरिधरकृतौ कुब्जापत्रे चित्रासम्बोधनं नाम तृतीयं पृष्ठम्।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु।

अथ चम्पकलतासम्बोधनाभिधानं शार्दूलविक्रीडित वृत्तनिबद्धं चतुर्थ पृष्ठम् •

कृष्णः कृष्णसखो जयत्यनुदिनं कृष्णं कृपालुं श्रये
कृष्णेनाभिनिषूद्यते भवभयं कृष्णाय तस्मै नमः।
कृष्णात् कोऽस्त्यपरः परोपकृतिकृत् कृष्णस्य दास्यं शुभम्
कृष्णे विश्रममेतु मे चलमनः कृष्ण! त्वमेवाव माम्।।१।।

माधवी टीका—कुब्जा चम्पकलता सखी को सम्बोधित करती हुई शार्दूविक्रीडित छन्द में चतुर्थ पृष्ठ का प्रारंभ करती है—अर्जुन के सखा श्रीकृष्ण की निरन्तर जय हो। कृपालु श्रीकृष्ण को मैं आश्रय करती हूँ। श्रीकृष्ण के द्वारा ही भवभय का नाश किया जाता है उन श्रीकृष्ण को नमन हो। भगवान् श्रीकृष्ण से श्रेष्ठ परोपकारी कौन होगा। श्रीकृष्ण की सेवा शुभ है। मेरा चञ्चल मन श्रीकृष्ण में विश्राम प्राप्त कर ले। हे परमात्मा श्रीकृष्ण! आप मेरी रक्षा कीजिए।

नृत्यन् मत्तमयूरिकापतिपतद् बर्हार्हमौलिं लस-
च्छ्रीवत्सं जनवत्सलं जलधरश्यामं विरामं द्विषाम्।
कन्दर्पामितसुन्दरं नटवरं वृन्दावनीभूषणं
श्रीराधामुखकञ्जमञ्जुमधुपं तापिच्छनीलं श्रये।।२।।

माधवी टीका—नाचते हुए उन्मत्त मयूरी के पति अर्थात् मयूर के गिरते हुए पंख को ही श्रेष्ठ मुकुट बनाकर धारण किए हुए श्रीवत्सलाञ्छन से सुशोभित भक्तवत्सल नवीनमेघ के समान श्यामल शत्रुओं के विरामस्थान अनेक कामदेवों के समान सुन्दर वृन्दावन के

अलंकारस्वरूप श्रीराधाजी के मुख कमल के मधुर भ्रमर तमालनील नटवर नागर श्रीकृष्ण चन्द्र का मैं समाश्रयण करती हूँ।

कर्षन्तं मृदुमन्दमन्दमुरलीनादैर्जनानां मनो
नामस्वं चरितार्थकं विदधतं श्रीराधिकाजीवनम्।
गोपीमण्डलमध्यमञ्जुलपदन्यासन्नटन्तं नटम्
गोविन्दं नवनीतचौर्यकुशलं रासेश्वरं चिन्तये।।३।।

माधवी टीका—कोमल एवं मन्द-मन्द मुरलीनादों से भावुकों के मनों को अपनी ओर खींचते हुए अपने नाम अर्थात् कृष्ण शब्द के अर्थ को चरितार्थ करते हुए श्रीराधिका जी के जीवन स्वरूप, गोपीमण्डल के बीच मञ्जुलचरण की थिरकन से नाचते हुए, इन्द्रियों के स्वामी नवनीत के चुराने में कुशल श्री रासबिहारी कृष्ण का मैं चिन्तन करती हूँ।

नन्दं नन्दयते प्रसूं म्रिडयते हैय्यङ्गवं मुष्णते
गोपीर्मोदयते सखी रमयते राधाननं चुम्बते।
बालान् क्रीडयते व्रजं समवते गोवर्धनं बिभ्रते
वेणुं वादयते खलान् दलयते कंसं ध्नते नौमि ते।।४।।

माधवी टीका—नन्द को आनंदित करते हुए, माँ यशोदा को प्रसन्न करते हुए, मक्खन चुराते हुए, गोपियों को प्रसन्न करते हुए, सखियों को रासक्रीडा का सुख देते हुए, राधाजी के मुख का चुम्बन करते हुए, बालकों को खेलाते हुए, व्रज की रक्षा करते हुए श्रीगोवर्धन को धारण करते हुए वंशी बजाते हुए, दुष्टों का दलन करते हुए कंस का वध करते हुए आप श्रीकृष्ण को अनुकूल करने के लिए मैं नमन करती हूँ।

गोप्यः किं व्यदधुस्तपः किमजपन् किं साधनं चक्रिरे
क्वेष्टापूर्तमहो व्यपूरिपुरुषः संराधितो वै कथम्।
यासां तक्रकणप्रलोभनवशो मायानटीनर्तको
गोविन्दोऽपि ननर्तिथार्यचरिते सर्वं विचित्रंस्फुटम्।।५।।

माधवी टीका—हे चम्पकलते! ब्रजदेवियों ने कौन सा तप किया था? कौन सा जप किया था? किस साधन का अनुष्ठान किया था। अरे! ऐसा कौन सा इष्टापूर्त किया था। परमपुरुष परमात्मा की उन्होंने कैसी आराधना की थी कि जिनके एक कण छाछ के लोभ में होकर माया नटी के नचाने वाले आप गोविन्द श्रीकृष्ण भी नाच पड़े थे। वस्तुतः श्रेष्ठ लोगों के चरित्र में सब कुछ विचित्र ही विचित्र घटता है।

यस्यासन् प्रतिरोमलब्धविभवा क्षीरार्णवाः कोटिशः
सोप्याद्यः स्पृहयाम्बभूविथ मुहुः स्तन्यायमातुर्ननु!
यं ध्यानेऽपि न योगिनः समभवन् द्रष्टुं क्षणेऽपि क्षमा
गोपीगूढ़गुलूचिका गुरुतमा गोपाल गोपायसी।।६।।

माधवी टीका—अरे जिन परमात्मा के एक-एक रोम में करोड़ों करोड़ों ब्रह्माण्ड विराजमान रहते हैं, वही आप श्रीकृष्ण माता यशोदा के दूध के लिए स्पृहयालु होते हुए दिखे। जिस परमात्मा को योगी जन ध्यान में भी साक्षात्कार करने में सक्षम नहीं हुए। हे गोपाल वही आप गोपियों की गोपनीय और विशाल गुलूचिकाओं को अपने कोमल कपोलों पर छिपाकर रखते हैं अर्थात् उन्हें अपना धन मानते हैं।

इत्थं प्रार्थितमेत्यमेऽथ मथुरामार्गे मुहुर्माधवो
मार्गन्त्याः श्रुतिमृग्यमेव जगदानन्दैककन्दं स्वकम्।
स्वीकृत्य ब्रजचन्दनो नततनोः प्रेमोल्लसच्चन्दनम्
नम्रीभूय बभौ भवाय भगवान् भावैकभाव्यो यतः।।७।।

माधवी टीका—इस प्रकार मेरी प्रार्थना सुनकर तथा मधुरा के मार्ग पर संसार के एकमात्र कारण स्वरूप वेदों के मार्गणीय स्वयं परमात्मा को ढूंढ़ती हुई झुके शरीर वाली मुझ कुब्जा के प्रेम से सुशोभित चन्दन को स्वीकार करके नम्र हुए व्रजचन्दन भगवान् श्रीकृष्ण जगत् के कल्याण के लिए प्रस्तुत होकर बहुत सुंदर लग रहे थे, क्योंकि भगवान् तो भावों से ही रिझाए जा सकते हैं।

यौष्माकीणकुचाग्रकुंकुमकलाकान्तोऽपि कान्तः श्रियो
मां सस्मेरमुखोऽभ्ययाचत सतां श्रीखण्डमाखण्डलः।
किं स्याद् भूषणभूषणस्य रुचये लोकत्रये शार्ङ्गिणो
वस्त्वन्यद्विकलाङ्गजातिजनुषामेकोऽवलम्बो हरिः।।८।।

माधवी टीका—हे चम्पकलते! जो आप लोगों के वक्षोजों के अग्रभाग में लिप्त कुंकुमकला से रासमण्डल में रमणीय लगते थे, और जो श्रीस्वरूपिणी राधाजी के पति हैं उन्हीं सत्पुरुष श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण ने मुझसे मुस्कुराकर चन्दन माँगा। अरे जो आभूषणों का भी आभूषण हैं ऐसे शार्ङ्गधन्वा परमेश्वर ब्रजेन्द्रनन्दन की शोभा के लिए तीनों लोकों में और दूसरी वस्तु कैसे समर्थ हो सकती है अर्थात् आभूषणों को सुशोभित करने वालों को कौन सुशोभित कर सकता है। अर्थात् मेरे चन्दन से उनकी क्या शोभा? चूंकि विकलांग जाति में जन्मे हुए अंगविकल लोगों के लिए श्रीहरि ही एकमात्र अवलम्ब है अतः मेरी कुण्ठा दूर करने के लिए ही प्रभु ने मुझसे चन्दन माँगा।

क्वाहं हीनकुला कुलाय सदिवा सत्पक्षतिः पक्षिणी
कुब्जा कुब्जकुमार्ष्ट्रभर्जितभवान्युब्जाब्जदण्डार्दिता।
क्वाद्यः कंसकुलार्दनः कुवलयापीडेभकण्ठीरवः
स्वीचक्रे स तु मां हि निर्दलनृणां रामो बलं केवलम्।।९।।

माधवी टीका—अरे चित्रा सखी जी! कहाँ मैं घोंसले में बैठी हुई पंखों के प्ररोह से भी हीन पक्षिशाविका की भाँति सामान्य कुल में जन्मी, कूबड़ रूप भाड़ में अपने सारे वैभवों को भूनकर विकलांगता के परिताप से झुलसी हुई ब्रह्मा जी के दण्ड से दण्डित कुब्जा परिस्थिति वाली एक सामान्य नारी और कहाँ कुवलयापीड हाथी को नष्ट करने में सिंह के समान कंस शत्रु भगवान् श्रीकृष्ण ऐसे महामहिमा सम्पन्न प्रभु ने मुझे स्वीकार कर लिया। क्योंकि राम ही निर्बलों के बल हैं। "सुने री मैंने निर्बल के बल राम"।

पीत्वा तत्परिहासपेशलवचः पीयूषयूषं मुहुः
सानन्दं श्रवणाञ्जलौ परिलसज्जीवैकजीवातु वै।
भूयस्तद्वदनारविन्दविगलन् मारन्दमाध्वीव्रतम्
चक्रे षट्पदधर्मलोचनयुगं रम्यं न कः सेवते।।१०।।

माधवी टीका—हे चित्रे! जीव की जीवनौषधि स्वरूपा प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण के परिहास कुशल वचनामृत का श्रवणाञ्जलि से पान करके फिर उनके मुख कमल का भ्रमर बना दिया मैंने अपने दोनों नेत्रों को। क्योंकि रमणीय वस्तु का कौन नहीं सेवन करता?

पादेन प्रपदं प्रपीड्य चिबुकं प्रोन्नम्य मे पाणिना
श्रीकृष्णोऽप्युदनीनयन् मम तनुं कुब्जं द्रुतं दूरयन्।
देवानां दिवि पश्यतां मृगदृशां मामुत्तमामुत्तम-
श्चक्रे रूपवतीमिदं भगवतः शार्दूलविक्रीडितम्।।११।।

माधवी टीका—हे चित्रा सखी भगवान् श्रीकृष्ण जी ने स्वर्ग में देवताओं के देखते-देखते अपने श्रीचरण से मेरे चरण के पंजे को दबाकर तथा

अपने श्रीहस्तकमल से मेरे चिबुक को उठाकर, मेरे कूबड़ को शीघ्रता से दूर करते हुए मेरे शरीर को उन्नत बना दिया और मुझे नारियों में सबसे श्रेष्ठ और रूपवती बना दिया। यही भगवान् श्रीकृष्ण का शार्दूलविक्रीड़ित अर्थात् सिंह के समान निर्भीकता के साथ प्रस्तुत किया हुआ विकलांगोद्धाररूप राष्ट्रलीला का उपक्रम था।

यो यौष्माककटाक्षतीक्ष्णविशिखैर्भूयो व्रणैरर्दितः
सोऽयं निश्छलभावलेपसुधया स्नेहान्मया लेप्यते।
मोघं कुप्यथ मे वृथैव शपथ स्नेहेन भृङ्गाय भो
रोलम्बो रमते क्व चम्पकलतायूथे धिया धीयताम्।।१२।।

माधवी टीका—हे चम्पकलते! जो श्रीकृष्ण आप लोगों के नयनों के तीखे बाणों से बहुत घायल हो चुके थे उन्हीं श्रीकृष्ण को मैं अपने छलहीन भावना की लेप सुधा से इस समय प्रेमपूर्वक लेप लगा रही हूँ। हे सखियों! मुझ पर व्यर्थ कुपित न हो। और बेचारे भ्रमर को व्यर्थ की गालियाँ न दो। आप लोग भी विचार कीजिए क्या कहीं चम्पा पुष्प के यूथ में भौंरा कभी रमता है?

इति धर्मचक्रवर्तिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु-रामानन्दाचार्य महाकवि स्वामिश्रीरामभद्राचार्यगिरिधरकृतौ कुब्जापत्रे चम्पकलतासम्बोधनाभिधानं चतुर्थपृष्ठम्।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु।

अथ इन्दुलेखा सम्बोधनाभिधानं उपजातिवृत्तनिबद्धं पञ्चमं पृष्ठम्

यो युष्मदीयाधरसीधुसिन्धू
मग्नः समक्रीडत रासगोष्ठ्याम्।
स एव कुब्जाहृदयैकहारो
व्यचीक्लृपत् सम्प्रति राष्ट्रलीलाम्।।१।।

माधवी टीका—अब कुब्जा इन्द्रलेखा सखी को सम्बोधित करती हुई उपजाति वृत्त में पंचम पृष्ठ का प्रारंभ करती है—

हे इन्दुलेखा सखि! जो आप लोगों के अधरामृत महासागर में मग्न होकर रासगोष्ठी में स्वच्छन्दक्रीड़ा करते रहे वही श्रीकृष्ण मथुरा में पधारकर कुब्जा के हृदयहार बनकर इस समय राष्ट्रलीला का प्रारंभ कर चुके हैं।

यो युष्मदीयाक्षिकटाक्षविद्धः
सन् ब्रह्मचारी विदितोऽच्युतो वः।
स एव मे शोकविनोददक्षो
हरिः कथं स्याद् व्यभिचारकारी।।२।।

माधवी टीका—हे इन्दुलेखे! जो श्रीकृष्ण आप लोगों के नेत्र कटाक्ष से विद्ध होकर भी आप लोगों की दृष्टि में अखण्ड ब्रह्मचारी बने रहे वही मथुरानाथ मेरे शोक के नाश में दक्ष होकर मेरे निकट आकर व्यभिचार करने वाले कैसे हो गए? अर्थात् यहाँ तो कुब्जा का शोक दूर करने के लिए ही पधारे।

यौष्माकवक्षोजविनोदहृद्य
श्चेत् ब्रह्मचारी किल निर्विकारः।
स एव कुब्जाश्रुविमृष्टपाणिः
कथं विकारी भगवान् मुरारिः।।३।।

माधवी टीका—हे इन्दुलेखे! यदि आप लोगों के वक्षोजों के लिए विनोद की क्रिया में मधुर श्रीकृष्ण ब्रह्मचारी और निर्विकार रहे तो वही, कुब्जा के आँसू पोंछने से गीले श्रीहस्तकमल वाले मुर के शत्रु भगवान् श्रीकृष्ण कैसे विकारी हो गए।

वृन्दावने वा मथुरावने वा
स एक एवाऽत्र न वेद भेदम्।
किमङ्गुलिप्रापितदिङ्विरोधम्
चन्द्रं बुधो द्वेधितमध्यवस्येत्।।४।।

माधवी टीका—वस्तुतः यदि वह भगवान् श्रीकृष्ण वृन्दावन में हो अथवा मथुरा के राजभवन में हो ये दोनों परिस्थितियों में एक ही हैं। उनमें मैं कोई भेद नहीं देखती। क्या अंगुली से आँखे ढक लिए जाने पर दो रूप में दिखने वाले चन्द्रमा को भी कोई विद्वान दो मानता है? उसी प्रकार इन्दुलेखा जी! वृन्दावन एवं मथुरा का व्यवधान होने पर भी श्रीकृष्ण में स्वरूपतः कोई भेद नहीं है।

यो रासलीलासुविलासदक्षो
हरिर्वभावक्षतसौरताढ्यः।
स एव कुब्जाकुचकुंकुमश्री–
रखण्डितः क्रीडति राष्ट्रलीलाम्।।५।।

माधवी टीका—इन्दुलेखाजी! जो भगवान् श्रीकृष्ण आप लोगों की रासलीला के विलास में निपुण होते हुए भी अक्षत ब्रह्मचर्य से युक्त बने रहे वही श्रीकृष्णचन्द्र आज भी कुब्जा के वक्ष की कुंकुम की शोभा से युक्त होते हुए भी अखंडित रहकर राष्ट्रलीला कर रहे हैं।

न चैव मत्स्वीकरणेन युष्मद्—
विश्वासघातं भगवान् व्यधत्त।
अनेन नूनं विकलांगभाजां
कृष्णः समाधत्त समाः समस्याः।।६।।

माधवी टीका—हे इन्दुलेखा सखी जी! वस्तुतः मुझे स्वीकार करके भगवान् श्रीकृष्ण ने आप लोगों के साथ कोई विश्वासघात नहीं किया। प्रत्युत मुझ विकलांगी कुब्जा को स्वीकार करके तो राष्ट्रनायक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ने विकलांगों की सारी समस्याओं का समाधान कर दिया।

प्राचीं गतः पङ्कजिनीविकासी
रोरूयते यश्च रविर्वयोभिः।
स एव मध्याह्नरुचातमोघ्नः
किं दक्षिणस्यां नहि दक्षिणोऽर्कः।।७।।

माधवी टीका—इन्दुलेखा जी! आप ही बताइए। पूर्व दिशा में उदित होकर कमलिनी को विकसित करते हुए जो सूर्यनारायण प्रातःकाल पक्षिओं द्वारा प्रशंसित होते हैं। क्या वही सूर्यनारायण दक्षिण दिशा में जाकर मध्याह्नकालीन प्रकाश में अन्धकार को नष्ट करके दक्षिण अर्थात् अनुकूल नहीं माने जाते। अर्थात् आप लोगों के समक्ष भगवान्

बालसूर्य थे और अब मेरे समक्ष मध्याह्न सूर्य हैं।

अशेषगोपीजनहृद्यरूपो
हरिः किमङ्गीकृतवान् हि कुब्जाम्।
उमासमालिङ्गितनेमदेशोऽ–
पीशो द्वितीयां क इवेन्दुलेखाम्।।८।।

माधवी टीका–हे इन्दुलेखा सखी जी! सम्पूर्ण गोपी जनों के लिए मनोहर रूप वाले गोपीप्राणबल्लभ होकर भी भगवान् श्रीकृष्ण ने कुब्जा को क्यों स्वीकार किया। इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार पार्वती जी द्वारा अर्द्धाङ्ग में आलिंगित होकर भी भगवान् शंकर ने द्वितीया की चन्द्रलेखा को स्वीकार किया। अर्थात् जैसे पार्वती की उपस्थिति में भी द्वितीय चन्द्रलेखा से भगवान् शंकर की शोभा ही बढ़ी उसी प्रकार आप लोगों की उपस्थिति में भी कुब्जा की स्वीकृति भगवान् श्रीकृष्ण की शोभा ही बढ़ा रही है।

यश्चोपजात्या सुमनो मुरल्या
रासे चकर्ष ब्रजवल्लवीनाम्।
चकर्ष चक्रेण स राष्ट्रलीलो
दुःखानि कृष्णो ननु राष्ट्रियाणि।।९।।

माधवी टीका–जिन श्रीकृष्ण जी ने उपजाति अर्थात् बांस की कोंठ में जन्मी हुई मुरली से व्रजांगनाओं के सुन्दर मनों को आकर्षित कर लिया था, उन्हीं श्रीकृष्ण ने मेरी सन्निधि में राष्ट्रलीला करते हुए सुदर्शन चक्र से राष्ट्रियदुःखों को समाप्त कर दिया।

सीमन्तिनी सीमनि राधिकायां
सीमन्तनैपुण्यचणश्च योऽभूत्।
स केशवो द्रौपदिकृष्टकेशान्
दुःशासनस्रिग्भिरलंचकार।।१०।।

माधवी टीका—हे इन्दुलेखे! जो श्रीकृष्ण श्रीवृन्दावन में कुलांगना शिरोमणि श्रीराधिका जी के केशों के गुंफान की निपुणता से युक्त हुए थे। उन्हीं केशव ने द्रौपदी जी के बिखरे केशों को दुःशासन की भुजा के रक्त से रञ्जित कर दिया। अर्थात् रासलीला में राधाजी के केशों का सुगन्धित तेल से शृंगार किया तथा राष्ट्रलीला में अपनी मित्र पत्नी द्रौपदी के खुले केशों का दुष्ट दुःशासन के रक्त से शृंगार किया।

योऽचूचुरत् गोपवधूदुकूलान्
तासां तनूर्दिव्यतमाविधित्सन्।
पटोऽभवन् सैव दशावतार—
सीमां ललङ्घे सदसि स्वसख्यै।।११।।

माधवी टीका—हे इन्दुलेखा जी! जिन श्रीकृष्णचन्द्र जी ने रासलीला में श्रीव्रजांगनाओं के शरीरों को दिव्यतम बनाते हुए उनके दुकूल चुराए थे वे ही श्रीकृष्णचन्द्र राष्ट्रलीला करते समय दुर्योधन की राजसभा में अपनी सखी द्रौपदी जी के लिए वस्त्रावतार स्वीकार करते हुए पुराणों में वर्णित दशावतारों की सीमा को लांघ गए। अर्थात् कच्छ, मत्स्य, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, रामकृष्ण, बौद्ध तथा कल्कि इन दशों अवतारों से भी अतिरिक्त वस्त्रावतार को लिया। जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने दोहावली में भी कहा—

सभा सभासद निरखि पट पकरि उठायो हाथ।
तुलसी धर्‌यो इगारहों हों वसन रूप यदुनाथ।। (दोहा १६७)

रासेश्वरो यो मुरलीधरोऽभूत्
वृन्दावने युष्मदनंगवर्धी।
स एव कुब्जार्पितराष्ट्रलीलो
राष्ट्रेश्वरो राजति चक्रधारी।।१२।।

माधवी टीका—हे इन्दुलेखा सखी जी! जो श्री ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र आप लोगों के प्रेमरस को उद्दीप्त करने के लिए श्री वृन्दावन में रासेश्वर बनकर मुरलीधारण कर लिए थे, वे ही इस समय मुझ कुब्जा द्वारा राष्ट्रलीला का महान् नायक बनाए जाने पर राष्ट्रेश्वर होकर सुदर्शन चक्रधारी के रूप में सुशोभित हो रहे हैं।

इति धर्मचक्रवर्तिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु–रामानन्दाचार्य महाकवि स्वामिश्रीरामभद्राचार्यगिरिधरकृतौ कुब्जापत्रे इन्दुलेखासम्बोधानाख्यं पञ्चमं पृष्ठम्।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु।

अथ तुङ्गविद्यासंबोधनाख्यं वसन्ततिलका वृत्तनिबद्धम् षष्ठं पृष्ठम्

यः पूतनास्तनमपीयत कालकूट-
कूटायितं कुटिलकण्टककोटिहन्ता।
तस्यै ददावपि गतिं गतिविज्जनन्याः
किं प्राकृतं तमवगच्छसि तुङ्गविद्ये।।१।।

माधवी टीका—अब कुब्जा तुङ्गविद्या सखी जी को सम्बोधित करके वसन्ततिलका वृत्त में षष्ठ पृष्ठ का आरम्भ कर रही है।

हे तुंगविद्या सखी जी! जिन कोटि कोटि कुटिल कण्टकों को नष्ट करने वाले बालकृष्ण ने करोड़ों कालकूटों के समूह से युक्त अत्यन्त भयंकर पूतना के स्तन में लगे हुए विष को अमृत के समान पी लिया एवं गतिवेत्ता परमेश्वर ने उसे माता की गति अर्थात् गोलोक दे दिया क्या उन परमात्मा श्रीकृष्ण को प्राकृत अर्थात् सामान्य रसिक किशोर समझती हैं?

संसारिणे निजशरीरमिदं प्रदाय
क्लेशादृते किमपि नो लभते ततः स्त्री।
दत्वेह कंसरिपवे विषमप्युमुष्मात्
किं विद्यते विविदिषास्त्वथ पूतनाग्रे।।२।।

माधवी टीका—हे तुंगविद्ये! संसारी पति को अत्यन्त प्रिय अपना यह शरीर देकर भी कोई साध्वी स्त्री उससे क्लेश के अतिरिक्त और कुछ भी प्राप्त नहीं कर पाती। किंतु कंस के शत्रु भगवान् श्रीकृष्ण को विष देकर भी उनसे क्या प्राप्त कर लिया जाता है? यह जिज्ञासा तो आप

सबको पूतना के समक्ष करनी चाहिए।

यश्चक्रवात्तवपुषा दनुजन्मनास्व–
र्नीतोऽपि नामृयत मारितवांस्तमद्रौ।
पाद प्रवालहुत शाकटमप्रमेयम्
किं मानुषं तमवगच्छथ घोषदेव्यः।।३।।

माधवी टीका—हे व्रजांगनाओं! जो बालकृष्ण चक्रवात का शरीर धारण किए हुए तृणावर्त राक्षस द्वारा आकाश में ले जाए जाने पर भी समाप्त नहीं हुए उसके विपरीत तृणावर्त को ही मार डाला उन्हीं अपने पल्लव चरण से शकटासुर का वध करने वाले सभी प्रमाणों से परे भगवान् श्रीकृष्ण को क्या आप लोग सामान्य मनुष्य मानती हैं?

हैयङ्गवीनहतिकोपितनन्दजाया
यं वै बबन्ध तरसार्भमुलूखलेऽपि।
सैव प्रपन्नजनदारूणपाशहन्ता
हन्ता मुचत्स्व जननीं कटुकंसबन्धात्।।४।।

माधवी टीका—हे तुंगविद्या सखी जी! जिन बालकृष्ण को माखनचोरी के आरोप से कुपित होकर नन्दरानी यशोदा जी ने आवेश में आकर बाल्यावस्था में ही उलूखल में ही बाँध लिया था, उन ही शरणागतों के दारुण भवपाश को नष्ट करने वाले कुब्जा बिहारी प्रभुश्रीकृष्ण ने कंस का वध करके अपनी माता देवकी को दुरन्तबन्धन से मुक्त कर दिया।

यत्पादपद्ममकरन्दपृषत्तृषार्ताः
प्रव्राजिता भवनतो मुनिभृङ्गवर्याः।

यूयं तमेव तमसस्परतोऽप्युदस्वित्
बिन्दुभ्य आदिशत नर्तितुमप्यनन्तम्।।५।।

माधवी टीका—हे तुंगविद्या सखी जी! जिन योगीश्वर श्रीकृष्ण भगवान् के श्रीचरण कमलों के प्रेममकरंद की एक बूँद की प्यास से आर्त होकर अनेक मुनिभ्रमर घर द्वार छोड़कर परिव्राजक बन बैठे। उन्हीं अन्धकार से परे आद्यन्तरहित परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण को आप लोगों ने छाछ की दो चार बूँदों के लिए नाचने का आदेश दे दिया। अर्थात् प्रेम में परमात्मतत्त्व का दुरुपयोग किया।

प्रेम्णो महादुरुपयोगमिमं क एवम्
सोढुं प्रभुस्तमतिरिच्य शिखण्डमौलिम्।
लोकेशमौलिमणिपूजितपादपीठो
युष्मत् पदत्रमपि यो विबभार मूर्ध्ना।।६।।

माधवी टीका—हे तुंगविद्या जी! उन मयूर मकुटी भगवान् श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और कौन प्रेम के इस महादुरुपयोग को सहन कर सकेगा। जिनकी लोकपालों की मुकुटमणियाँ भी, जिनकी पादुका की पूजा करती हैं ऐसे जिन भगवान् मधुसूदन ने आप जैसी गोपियों की पनहियां भी अपने शिर पर धारण कीं। श्रीमद्भागवत में स्पष्ट प्रमाण है, कि भगवान् श्रीकृष्ण गोपियों की आज्ञा मानकर उनके पादत्राण भी उठा जाते थे। '**विभर्ति क्वचिदाज्ञप्तः पीठिकोन्मान्पादुकम्**'' (भागवत-१०-११-८)

यं कालियास्य शतवह्नि विषाम्बरीष-
ज्वालावलीशदपि नैवशशाक दग्धुम्।

तं सत्यसङ्गरमनङ्गभुजङ्गदंशः
किञ्चित् विकर्तुमिह किं प्रभवेत्प्रभुम्भोः।।७।।

माधवी टीका—हे तुंग विद्या जी! आप थोड़ा तो विचार कीजिए। जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को कालियानाग के मुख से निकले हुए सहस्रों अग्निमय विषाक्त भाड़ों की ज्वाला भी थोड़ा सा भी जलाने में समर्थ नहीं हो पाई उन्हीं सत्यप्रतिज्ञ अच्युत परमेश्वर को क्या कामसर्प किञ्चिन्मात्र भी विकृत करने में समर्थ हो सकेगा?

योऽपाद् ब्रजं ब्रजपतिस्तरसादिधक्षुं
दावानलं शमितदारुणदावदावः।
योषासमुज्ज्वलितदीपशिखापतंगः
शेषो भवेत्कथमधिश्रितसत्पतंगः।।८।।

माधवी टीका—जिन ब्रजेन्द्र नन्दन श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने ब्रज को वेगपूर्वक जलाने की इच्छा कर रहे घोर दावानल को पी लिया और वन की दावावनाग्नि को शान्त कर दिया। वे ही सन्तरूप पक्षियों के आश्रय वृक्षस्वरूप परमात्मा श्रीकृष्ण भला नारी रूप दीपशिखा के पतंगा कैसे बन सकते हैं।

यो बालकौतुकमिषेण मिषत्स्वमीषु
त्रैविष्टपेशु बलिनो दनुजान् जघान।
कंसेभकुंभदलनोत्सवदृप्तसिंहः
क्रीडामृगो ह्यबलया किमसौ क्रियेत।।९।।

माधवी टीका—हे तुंग विद्या सखी जी! जिन वृन्दावन विहारी कन्हैया जी ने देवताओं के देखते-देखते बालकौतुक के बहाने अघासुर आदि

दैत्यों का वध कर डाला। वे ही कंसरूप मतवाले हाथी के गण्डस्थल के विदारण रूप महोत्सव से दृप्त महासिंहरूप भगवान् श्रीकृष्ण क्या मुझ जैसी सामान्य अबला द्वारा कभी भी क्रीडामृग बनाए जा सकते हैं? अर्थात् क्या इतने पराक्रमी भगवान् श्रीकृष्ण को मैं अपने वश में कर सकती हूँ।

यः सप्तहायनशिशुः पुरुहूतकोपात्
साम्बर्तकाम्बुदभयंकरवर्षबातात्।
रक्षन् व्रजं गिरिमधात् किल सप्तरात्रम्
लीलातपत्रमिव किं स भवेदभीकः।।१०।।

माधवी टीका—हे तुंगविद्या सखी जी! भला आप ही बताइये कि जिन सप्तवर्षीय बालकृष्ण ने इन्द्रके कोप से प्रेरित सांवर्तक जैसे प्रलयकारी मेघ और भयंकर झंझावात से ब्रज की रक्षा करते हुए सात दिन, सात रात खेल खेल के छत्रदण्ड की भाँति गोवर्धन को धारण कर लिया था, क्या वे प्रभु कामान्ध हो सकते हैं?

यं गोपिकाग्रहकसंख्यकसिद्धवृत्तै-
रुद्गीय गीतचरिता अभवन् भवत्यः।
लोके वसन्ततिलका इव पूर्णकामा
किं कुब्जया स क्रियतां हि विगीतवृत्तः।।११।।

माधवी टीका—हे तुंगविद्या सखी जी! जिन श्रीकृष्ण चन्द्र को आप जैसी अनेक गोपिकाएँ उन्नीस कनकमञ्जरी तथा वसन्ततिलका जैसे सिद्ध छन्दों में गोपीगीत द्वारा सस्वर गाकर इस लोक में वसन्ततिलका अर्थात् कोकिला की भाँति ख्यात चरित्र वाली हो गईं और अपनी

समस्त कामनाएँ पूर्ण करके प्रभु में तल्लीन हुईं क्या उन द्वारकाधीश परमात्मा को कुब्जा द्वारा विकृत किया जा सकेगा?

यत् पादपंकज रजः शिरसा निबोढुम्
भूया स्तपः समचरल्ललनाललाम।
श्रीः कुब्जयाकथमसौ स्ववशे कृतस्यात्
नूनं हरिः क्षपितपक्षकपक्षपाती।।१२।।

माधवी टीका—हे तुंग विद्या जी! जिन प्रभु श्रीकृष्ण के चरण कमलपराग को शिर पर धारण करने के लिए महिला रत्न भगवती लक्ष्मीजी ने बहुत बड़ा तप किया ऐसे सर्वसमर्थ वसुदेवनंदन भगवान् कृष्ण क्या कुब्जा द्वारा अपने वश में किये जा सकते हैं। निश्चित ही श्रीहरि उन्हीं पर पक्षपात करते हैं जिनके सारे पक्ष समाप्त हो चुकते हैं।

इति धर्मचक्रवर्तिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु—रामानन्दाचार्य महाकवि स्वामिश्रीरामभद्राचार्यगिरिधरकृतौ कुब्जापत्रे तुंगविद्यासम्बोधनं नाम षष्ठं पृष्ठम्।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु।

अथ रङ्गदेवी संबोधनाभिधानं मालिनीवृत्तनिबद्धं सप्तमं पृष्ठम्

मधुपमधुरबन्धो मञ्जुमाधुर्यसिन्धो
रसिककुलललामोद्दामकर्माभिरामः।
विरुदविशदपद्माच्छद्मपद्मैकसद्मा
जयसि जगति कोऽपि प्रेमरक्षैक धर्मा।।१।।

माधवी टीका—अब कुब्जा श्रीरंगदेवी सखी जी को सम्बोधित करती हुई मालिनी वृत्त में श्रीभागवत में वर्णित भ्रमरगीत का सैद्धान्तिक उत्तर देती हुई सप्तम पृष्ठ का प्रारंभ करती है। हे भ्रमर! तुम मधुर स्वभाव वालों के बन्धु हो और सौंदर्यपूर्ण माधुर्य के महासागर हो, तुम रसिक समूह में श्रेष्ठ तथा उन्मुक्त प्रेम कृत्य के कारण सुन्दर लगते हो। तुमने अपने यश से कमल को भी निर्मल बनाया। तुम निश्छलस्वभाव होने के कारण ही एकमात्र कमलिनी के कोष को रात्रिकालीन निवास स्थान बनाए हो। इसीलिए प्रेम की रक्षा ही अपना एकमात्र धर्म मानकर तुम संसार में सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त कर रहे हो। क्योंकि समर्थ होते हुए भी तुम कमल कोश का भेदन नहीं करते।

मधुप सुमनसां त्वं नैक भावौघभाजाम्
समुदितरसराशिं रासचञ्च्वा विचिन्वन्।
विशदयसि विशिष्टाद्वैतवादप्रमाणम्
सदसि सदसि सन्तो यन्ति सन्तं भवन्तम्।।२।।

माधवी टीका—हे भ्रमर! वस्तुतः तुम सत् स्वरूप हो क्योंकि अनेक

प्रकार के खट्टे मीठे तीखे कड़वे अम्ल कसैले स्वादों के समूहों से युक्त अनेक पुष्पों के रसों की राशि को रासरूप चञ्चु से इकट्ठी करके विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त की भाँति उसे विशिष्ट कर देते हो। अर्थात् किसी की भी स्वतंत्र सत्ता नहीं रहने देते। सम्पूर्ण पुष्पों के भिन्न-भिन्न स्वादों को समाप्त कर अपनी मधुरता मिश्रित कर सबको एकमात्र मधु बना देते हो। इसीलिए शिष्टों की सभा में सन्त जन तुम्हें सन्त मानकर आदर्श रूप में स्वीकारते हैं। मधुकर सरिस सन्त गुन ग्राही।

मधुप किल षडंघ्रिख्यातिसंहृष्टपद्मा
परिचरणसुखाढ्यो दारुभिच्चुञ्चु चञ्चुः।
निशि नलिननिलीनस्तद्भिदाभीतिभीतो
भवसि वनजबन्दी प्रेमनिघ्नत्वमेतत्।।३।।

माधवी टीका—हे भ्रमर! तुम अपने छः चरणों की ख्याति से युक्त हो तथा विकसित कमलिनी के सेवन सुख से भी परिपूर्ण हो। और तुम्हारी चोंच काष्ठ को भेदने में भी निपुण है। इतने सामर्थ्यवान् होकर भी तुम कमलकोश के भिन्न होने के डर से डरे हुए रात्रि में उसमें छिप जाते हो। और परम स्वतंत्र होकर भी कमल के बन्दी बन जाते हो। यही तो तुम्हारी प्रेम परतंत्रता है।

मधुप सुकृतराशिं सत्कृतज्ञाग्रगण्यम्
त्रिजगति जगुरार्या गुण्यचूडामणिं त्वाम्।
रसलवमपि पीत्वा यस्य कस्यापि दृष्टो
मुखरितमधुगुञ्जं मञ्जु जेगीयसे तत्।।४।।

माधवी टीका—हे भ्रमर! तीनों लोकों में आर्यजन एकमात्र तुम्हीं को पुण्यों की राशि सन्त और कृतज्ञों में अग्रणी तथा श्रेष्ठ गुणवानों के

चूडामणि के रूप में ही गा उठे हैं। क्योंकि जिस किसी सुन्दर या असुन्दर पुष्प का मीठा या खट्टा थोड़ा सा भी रस पीकर तुम उसके गुणागुण का विचार नहीं करते प्रत्युत सबको एक मात्र मीठा मानते हुए मधुर गुञ्जन से मुखरित होकर बारबार गुनगुनाते हुए गाते रहते हो।

मधुप तव निसर्गं कः क्षमेतानुगन्तुम्
विविधकुसुमकानां विस्मरन् भेदभावम्।
पिबसि रसमनिन्दन् सर्वदैवाभिनन्दन्
न दलसि दलमेषां गुण्यगृह्या हि सन्तः।।५।।

माधवी टीका—हे भ्रमर! वस्तुतः तुम्हारी इस अलौकिक प्रकृति का अनुगमन करने में और कौन समर्थ हो सकता है? तुम तो अनेक विधा वाले पुष्पों के भेदभाव का विस्मरण करते हुए प्रत्येक पुष्प की रस निन्दा न करते हुए तथा सर्वदा उनकी प्रशंसा करते हुए ही पीते रहते हो और पुष्पों की पंखुड़ियों को भी नष्ट नहीं करते। क्योंकि सन्तजन श्रेष्ठ गुण्यजनों पर पक्षपात करते ही हैं।

मधुप तव समानः कोऽपरो ब्रह्मदृष्टिः
कटुमधुररसानामेकभावे सुमानाम्।
रससि रसमजाजन् स्वादभेदं विविक्ते
कथय किमसि रागी वानुरागी विरागी।।६।।

माधवी टीका—हे भ्रमर! वस्तुतः तुम्हारे समान ब्रह्मदृष्टि रखने वाला और दूसरा कौन हो सकता है क्योंकि तुम कटु तथा मधुर रस वाले सभी पुष्पों का रस एकभाव से स्वाद का भेद न जानते हुए पी लेते हो। तुम ही बताओ तुम रागी हो, अनुरागी हो या विरागी हो। अर्थात् सामान्य दृष्टि से रस के लोभी होने के कारण तुम रागी प्रतीत होते हो। तुम्हारे मन में स्वाद के प्रति भेदबुद्धि नहीं रहती इसलिए विरागी

लगते हो। पुष्प के रस के अतिरिक्त और कुछ नहीं लेते। इससे अनुरागी जान पड़ते हो।

मधुप कमलमित्वा न प्रकामं प्रसन्नः
कटुकुसुममुपेतो नो विषण्णो निकामम्।
अटसि निरवलेपो मुक्तभेदावलेपो
लससि जगति वन्द्यस्त्वं स्थितप्रज्ञवर्यः।।७।।

माधवी टीका—हे भ्रमर! वस्तुतः तुम वन्दनीय हो। क्योंकि कमल को प्राप्त करके न तुम बहुत प्रसन्न होते हो और न ही सामान्य कटु पुष्पों के पास जाकर बहुत दुःखी होते हो। तुम तो पुष्पों की आसक्ति से रहित होकर रसभेद के अहंकार से मुक्त रहकर सर्वदा भ्रमण करते रहते हो। इसीलिए इस जगत् में स्थितप्रज्ञों के शिरोमणि होकर भी सुशोभित हो रहे हो।

मधुप निजनिसर्गेणातिशेषे मरालम्
स भवति पयसोर्वै भेदधीर्नित्यमेव।
पिबसि कटुमधूनां स्वादभेदं निरस्यन्
त्वमिह परमहंसो राजहंसस्तु हंसः।।८।।

माधवी टीका—हे भ्रमर! तुम तो अपने स्वभाव और स्वरूप से हंस को भी अतिक्रान्त करके ऊपर उठ चुके हो। क्योंकि हंस दूध और जल में सदैव भेदबुद्धि रखता है पर तुम तो कड़वे और मधुर पुष्प रसों का स्वादभेद दूर कर समान बुद्धि से सभी रसों का पान करते हो। इसलिए तुम तो परमहंस बन गए हंस बेचारा राजहंस ही बनकर रह गया।

मधुप जनविजल्पैर्मा शुचः श्यामिकायाम्
बहुमतइह लोके श्यामलः प्रेमरागः।

कुवलयदृगभीष्टा भामिनीभद्रलोके
चिकुरमसितमेव प्रत्ययं यौवनस्य।।९।।

माधवी टीका—हे भ्रमर! लोगों के जल्पन के आधार पर तुम अपने कालेपन पर दुःखी मत होओ। क्योंकि इस लोक में प्रेम का श्यामल रंग ही सम्मानित हुआ है और भद्रजनों के समुदाय में श्यामल नेत्रबाली नारी ही अभीष्ट मानी गई है और काले केश ही युवावस्था के विश्वास के कारण बनते हैं। अर्थात् केशों की धवलता देखकर युवावस्था संदिग्ध हो जाती है।

मधुप मधुरमैत्रीं त्रायते कस्त्वदन्यो
न दलसि दलमाब्जं तत्सखित्वेन बद्धः।
अनघमसितसख्यं श्यामतानिन्दयालम्
स्वमसितमिवतारं दर्शमावेम कृष्णम्।।१०।।

माधवी टीका—हे भ्रमर! तुम्हारे अतिरिक्त भला मधुर मित्रता का और दूसरा कौन अधिक रक्षण करता है। क्योंकि कमल कोश में बद्ध होकर भी उसकी मित्रता के कारण तुम सामर्थ्यवान् होते हुए भी कमलकोश को नहीं विदीर्ण करते। इसलिए काले लोगों की मित्रता निर्दोष होती है। श्यामता की निंदा करना ठीक नहीं। हे सखियो! अब तो हमें अपने आँख की काली पुतली की ही भाँति भगवान् श्रीकृष्ण को छिपाकर रखना चाहिए।

मधुप न कुलिकस्त्वं सत् कुलीनो न जिह्मो
भ्रमसि यतिरिवाद्यः सौमनस्यं वितन्वन्।
ऋतममृतमिवत्वद् वाक्कदम्बं कदम्बा-
हमपि यदवलम्बा तीर्णबाधा कदम्बा।।११।।

माधवी टीका—हे भ्रमर! तुम कसाई नहीं हो। तुम सुहृद हो। तुम कुलीन हो कपटी नहीं। तुम तो संन्यासी की भाँति सौमनस्य का विस्तार करते हुए भ्रमण करते रहते हो। तुम्हारी वाणी का समूह सत्य और मधुर है। 'उसी का अवलम्ब प्राप्त करके सामान्य माता की कोख से जन्मी हुई भी मैं कुब्जा सभी बाधाओं को प्राप्त कर श्रीकृष्ण की शरणागति प्राप्त कर सकी।

मधुप वनजवासं पद्मिनीहासरासम्
रसिककुलविकासं मण्डिताकाशलासम्।
सततमिहभवन्तं प्रेमपाथेयवन्तम्
रसयतु रसरस्यं मालिनीरंगदेवी।।१२।।

माधवी टीका—इस अन्तिम छन्द में कुब्जा भ्रमर के प्रति मंगलाशासन और मुद्रालंकारविधा से मालिनीवृत्त तथा रंगदेवी का भी स्मरण कर रही है—हे भ्रमर! कमल में निवास करने वाले, कमलिनी को मुस्कान एवं रस प्रदान करने वाले, रसिक कुल को विकसित करने वाले तथा आकाश के आनन्द को सुशोभित करने वाले, ऐसे प्रेम पाथेयमकरन्द से युक्त तुम जैसे प्रेम के अद्वितीय सम्मानकर्ता को रंगमञ्च को दीप्त करने वाली मालिनी तथा मालिनी वृत्त में सम्बोधित श्रीराधा की सप्तम सखी रंग देवी निरन्तर आनंदित करती रहें।

इति धर्मचक्रवर्तिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु-रामानन्दाचार्य महाकवि स्वामिश्रीरामभद्राचार्यगिरिधरकृतौ कुब्जापत्रे रङ्गदेवीसम्बोधनाभिधानं सप्तमं पृष्ठम्।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु।

अथ सुदेवीसम्बोधनामिधानं शालिनीवृत्तनिवद्धम् अष्टमं पृष्ठम्

श्यामं श्यामाश्यामनेत्राभिरामम्
रामारामं विश्वबाधाविरामम्।
दीनानाथं नाथिताशेषनाथं
कामं कामः किं विकुर्यादकामम्।।१।।

माधवी टीका—अब कुब्जा सुदेवी सखी को सम्बोधित करती हुई शालिनी वृत्त में अष्टम् पृष्ठ का प्रारंभ करती है। हे सुदेवी सखी जी! राधाजी के नीले नेत्रों के कटाक्षों से सुन्दर लगने वाले, श्रीब्रजांगनाओं के एकमात्र विहार स्थान स्वरूप सम्पूर्ण बाधाओं के विराम अर्थात् अभावस्थान रूप मुझ जैसी दीन असहाय महिलाओं के नाथ तथा समस्त लोकपालों को भी शासित करने वाले सांसारिक कामनाओं से रहित क अर्थात् ब्रह्मा अ अर्थात् विष्णु म अर्थात् शिव इन तीनों के आश्रय स्वरूप भगवान् श्यामसुंदर को तुच्छ काम कैसे विकृत कर सकेगा।

स्मारं स्मारं घोरसंसारसारम्
पारावारं यत्पदं वार्विहारम्।
तेरुर्धीराः गोष्पदीकृत्य गोप्यः
कासारस्तं किं निमग्नं दधीत।।२।।

माधवी टीका—हे गोपियों! जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के कालीदह तथा यमुना जल में विहार करने वाले श्रीचरणों का बार-बार स्मरण

करके धीर जन अत्यन्त घोर आवागमन रूप ताप से युक्त, ऐसे संसार सागर को गौ के खुर के समान बनाकर तर गए। उन अच्युत अनन्त सागर सदृश गम्भीर मदनमोहनप्रभु को दो चार बूँद जल वाला कीचड़ सदृश काम कैसे डुबो सकता है।

वृन्दारण्ये चारयामास धेनू
र्यो गोपालो गोत्रलीलातपत्रः।
गोविन्दं तं ज्ञानगोतीतमीशं
गोप्यो गावः किंकरं किं विदध्युः।।३।।

माधवी टीका—हे गोपियो! श्री गोवर्धन को खेल खेल में छत्र के समान धारण करते हुए जिन गोपाल कृष्ण ने श्रीवृन्दावन में गौओं को चराया। उन्हीं ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से अतीत श्री गोविंद को गोपद की अर्थभूत से क्षुद्र इन्द्रियाँ कैसे अपना किंकर बना सकती हैं।

यो युष्माकं नेत्रवस्त्रापहारी
वृन्दारण्ये रासलीलाप्रचारी।
कामारीष्टः कंसवंशप्रहारी
कृष्णः सोऽभूत् कोऽपि कुब्जाविहारी।।४।।

माधवी टीका—हे सुदेवी जी! जिन मदनगोपाल श्रीकृष्ण ने आपश्री ब्रजांगनाओं के वस्त्र एवं नेत्रों का हरण किया तथा श्रीवृन्दावन में रासलीला का प्रचार किया। वे ही भगवान् शंकर के इष्टदेव कंसवंश के विनाशक भगवान् कृष्ण इस समय कुब्जाविहारी हो चुके हैं?

यो युष्माकं प्रेमपाशानुबद्धो
नृत्यन्नासीन् मुष्टहय्यङ्गवीनः।

सोऽयं कुब्जाप्रेरितो राष्ट्रधर्मे
दाम्यन्नास्ते दानवांश्चक्रधारी।।५।।

माधवी टीका—हे सुदेवी जी! जो श्रीकृष्ण आप लोगों के प्रेमपाश में बँधकर माखन चोरी करके नृत्य करते थे वही श्रीकृष्ण चन्द्र इस समय मुझ कुब्जा की प्रेरणा से प्रेरित होकर राष्ट्रधर्म में प्रवृत्त योगेश्वर सुदर्शन चक्र धारण करके अब राष्ट्रविरोधी दानवों का दमन कर रहे हैं।

वंशी तावद्रोचतेस्मादिपुंसे
यावद् राष्ट्रे शान्तिसद्भावयोगः।
भीष्मग्रीष्मोत्तापिते पार्थशस्ये
चक्री सोऽभूत् कृष्णपर्जन्य आरात्।।६।।

माधवी टीका—हे सुदेवी जी! जब तक राष्ट्र में शान्ति एवं सद्भाव का योग था तब तक भगवान् के श्रीहस्तकमल में विराजमान वंशी उन्हें रुचती थी। परन्तु जब भीष्म के द्वारा पार्थरूप फसल सुखाई जाने लगी तब वही श्रीकृष्ण मेघ सुदर्शन चक्रधारी बन गए।

यो वै गोपीचीरहारी मुरारिः
कृष्णाचारी रासलीलाविहारी।
सोऽयं कृष्णः कृष्णयाहूयमानो
गीतागानो भाति वस्त्रावतारी।।७।।

माधवी टीका—हे सुदेवी सखी जी। जो रासेश्वर मुरदानवहन्ता श्रीकृष्ण-चन्द्र जी यमुना के तट पर भ्रमण करते हुए गोपियों के वस्त्रहारी बने। वे ही गीतागायक योगेश्वर भगवान् कृष्ण, कृष्णा द्रौपदी की टेर लगाए जाने पर वस्त्रावतार लेकर कुरुराज सभा में उपस्थित हो जाते हैं।

यो वै देवो निर्गुणो निर्विकारो
द्वन्द्वातीतः शान्तिशोभापरीतः।
तं गोविन्दं स्वामिनं सद्गवीनां
निघ्नं कुर्याद् ग्राम्यधर्मः कथं भोः।।८।।

माधवी टीका—हे सुदेवी जी! जो भगवान् श्रीकृष्ण हेय गुणों से रहित कामादि छः विकारों से दूर सुख दुःखादि द्वन्द्वों से अतीत तथा शान्ति एवं शोभा से युक्त हैं उन्हीं, महात्माओं की इन्द्रियों के स्वामी गोविन्द देवाधिदेव श्रीकृष्ण को काम, अपने अधीन कैसे कर सकता है?

युष्मत्पार्श्वे योऽच्युतो ब्रह्मचारी
सोऽस्मत्संगे किं विकारी विहारी।
यः पूर्णेन्दू रोहिणीरम्यकान्तिः
किं सः क्लान्तो राकया रोचमानः।।९।।

माधवी टीका—हे सुदेवी जी! जो आप लोगों के पास अच्युत एवं अखण्ड ब्रह्मचारी बने रहे वे ही मथुराविहारी सरकार हमारे सम्पर्क में विकारी कैसे? आप ही बताएँ जो पूर्ण चन्द्रमा रोहिणी के कारण रमणीय कान्ति वाले और परिपूर्ण दीखते हैं। क्या वे ही पौर्णमासी तिथि से सुशोभित होकर कलाहीन हो सकते हैं? सत्य तो यह है कि जैसे रोहिणी और पूर्णिमा दोनों मिलकर चन्द्रमा की शोभा बढ़ाती हैं उसी प्रकार गोपी और कुब्जा दोनों के समन्वय से ही कृष्णलीला की पूर्णता है।

कीरो यन्मां दुर्भगेत्यब्रवीद् भोः
बाहुब्रीह्यात् सोऽर्थ मस्पष्टमूचे।

दुष्प्रापं मे भाग्यमाहात्म्यमन्यै–
र्यच्छ्रीखण्डे नार्चयं श्रीनिकेतम्।।१०।।

माधवी टीका–हे सुदेवी जी! परम्परा से तोते की भाँति भागवत जी को आनुपूर्वी कण्ठस्थ करने वाले शुकाचार्य जी ने जो मुझे दुभर्गा कहा न्यायतः बहुब्रीहि समास करते हुए उन्होंने दुर्भगा शब्द के अर्थ की स्पष्टता नहीं की। वस्तुतः दुष्प्रापं भगं सौभाग्यं यस्याः सा दुर्भगा। इस प्रकार विग्रह करने पर अर्थ होगा कि जिसका भग अर्थात् माहात्म्य और लोगों के लिए दुष्प्राय है, वही मैं दुर्भगा हूँ। क्योंकि मेरे सौभाग्य का माहात्म्य बड़े–बड़ेयोगीजनों द्वारा भी दुष्प्राप्य है। क्योंकि मैंने श्रीनिकेत परमात्मा को भी श्रीखण्ड लगाकर ही सन्तुष्ट और स्ववश कर लिया।

पूर्वं धात्रा कंसदासीकृताऽहम्
कुब्जा न्युब्जा लब्धलोकावमाना।
सैवेदानीं कृष्णकारुण्यगङ्गा–
ऽभङ्गाऽऽसंगाऽभूवमब्जाक्षरङ्गा।।११।।

माधवी टीका–हे सुदेवी सखी जी! मैं प्रथम तो तीनों तापों से तपी, लोक का अपमान सहा और कुबड़ी होकर कंस की दासी बनी। वही मैं भगवान् कृष्ण की करुणा की गंगा में अपनी सम्पूर्ण आसक्तियों को बहाकर कमलनेत्र मथुराधीश परमेश्वर की दासी बन गयी।

साऽहं याचे प्राञ्जलिः प्राप्तबाधा
राधादेवी शालिनीं त्वां सुदेबीम्।

कृष्णे भक्तिं तज्जनेषु प्रसक्तिम्
भोगासक्तिं शौरिपादानुरक्तिम्।।१२।।

माधवी टीका—हे सुदेवी जी! वही पहले की दुःखियारी मैं कुब्जा भगवती राधाजी से एवं आपश्री सुदेवी सखी जी से हाथ जोड़कर भगवान् कृष्ण के प्रति भक्ति, भगवद् भक्तों के प्रति आसक्ति एवं वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र जी के श्रीचरण कमलों में अनुरक्ति की याचना करती हूँ।

इति धर्मचक्रवर्तिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु-रामानन्दाचार्य महाकवि स्वामिश्रीरामभद्राचार्यगिरिधरकृतौ कुब्जापत्रे सुदेवीसम्बोधनाभिधानं अष्टमं पृष्ठम्।

श्रीकृष्णार्पणस्तु।

अथ राधिकासम्बोधनाभिधानं पृथिवीवृत्तनिबद्धम् नवमं पृष्ठम्

प्रतापतरुणस्तरूप्रवरदर्पभंगव्रती
महेन्द्रविधि वंदितो बलसमीरणोद्दीपितः।
सघोषजनिरुद्धतो वृजिन हा हरिर्वैनृणा
मघौघवननमुज्ज्वलो दहतु कंसवंशानलः।।१।।

माधवी टीका—अब कुब्जा राधाजी को सम्बोधित करती हुई पृथिवी वृत्त में नवम पृष्ठ का प्रारंभ करती है—प्रताप के कारण तीव्र विशाल वृक्षरूप दैत्यों का अहंकारचूर्ण करना ही जिसका व्रत है, ऐसे बलरामरूप वायु से प्रज्वलित तथा व्रज की झोपड़ियों में प्रकट भक्तों के इन्द्र एवं ब्रह्मा से वंदित मनुष्योंके पापांधकार को नष्ट करने वाला, अत्यन्त ओजस्वी, ऐसा कंसवंश रूप बाँस के वन को जलाने में कुशल महान् अग्नि हमारे पाप समूहों के वन को भस्मसात् कर दे।

नवीनघनसुन्दरो भवनिधेर्महामन्दरो
बलेन बलिना युतः कुवलयी कुमारान्वितः।
गजेन्द्रमदमर्दनो दनुजदुष्टदर्पार्दनो
दुरोतु मम कैतवं कुटिलकंसहा माधवः।।२।।

माधवी टीका—नवीन बादल के समान सुंदर, महाभवसागर के लिए मंदराचल के समान, परम बलशाली बलराम जी से युक्त, ग्वाल वालों से सुशोभित, नीलकमल धारण किए हुए कुवलयापीड के मद को चूर करने वाले दुष्टराक्षसों के दर्पहारी क्रूरकंस का वध करने वाले श्रीराधावर माधव मेरे कपट को समाप्त कर दें।

अनर्पितचरं परं सततयोगयुक्तात्मनां
समर्चितचरंपुरा त्रिपुरदर्पविध्वंसिना।
वृषार्कतनयाकुचोल्लसितकुंकुमाभ्यर्चितं
पृथिव्यधिविभूषणं जयति केशवावांघ्र्यम्बुजम्।।३।।

माधवी टीका—जो श्रीचरण कमल निरन्तर योगयुक्त आत्माओं, महात्माओं को भी पहले कभी समर्पित नहीं किए गए, और जिन्हें त्रिपुरशत्रु भगवान् शंकर ने प्रेम से पूजा, जो वृषभानुनन्दिनी राधाजी के वक्षोज पर विराजमान कुंकुम से सुशोभित हुए और जो भगवती वसुन्धरा के एकमात्र आभूषण बने, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के श्रीचरणकमलों की जय हो।

प्रसीद मयि राधिके परमप्रेमसंसाधिके
मुकुन्दवरवल्लभे सकलयोगयुग्दुर्लभे।
निधेहि शयसारसं विनतमस्तके मेऽनघे
सपत्नित तनूमिमां विमलयाशु कृष्णप्रिये।।४।।

माधवी टीका—हे परम प्रेम की साधिके! राधिके! आप मुझ पर प्रसन्न हो जाएँ। हे योगिजनों के लिए दुर्लभ भगवान् श्रीकृष्ण की प्राणप्रिये! राधा रानी जी! आप मुझपर प्रसन्न हों। हे निष्पापचरित्र वृषभानु-नन्दिनी जी आप मेरे विनम्र मस्तक पर श्रीकरकमल पधरा दें। हे कृष्णप्रिये! सौतन के भाव से युक्त मुझ कुब्जा के इस शरीर को शीघ्र निर्मल कर दीजिए।

न यावदसितेक्षणे करुणया जनं वीक्ष्यसे
न तावदघसूदने भवति भक्तिभावो दृढ़ः।

उपेक्ष्य किमु कौमुदीं शरदखण्डराकापते-
श्चकोरकशिशुः कदाप्यमृतविन्दुभिः प्लाव्यते।।५।।

माधवी टीका—हे नीलकमल नयने! जब तक आप भक्त को करुणा दृष्टि से नहीं निहारतीं। हे पापनाशिनी तब तक भक्तिभाव दृढ़ हो ही नहीं सकता। अरे कौमुदी की उपेक्षा करके क्या चकोर शावक कभी भी शरद पूर्णिमा के निष्कलंक चन्द्रमा के अमृतबिंदुओं से आप्लावित हो सकता है?

त्वमेव रसनिर्झरी रसिकराजप्राणप्रिया
त्वमेव नव वल्लरी मृडयसीशकल्पद्रुमम्।
त्वमेव मुनिदुर्लभा शिखिशिखण्डभृद्वल्लभा
रसेन्दुनवकौमुदी प्रमुदिताननास्तान्मुदे।।६।।

माधवी टीका—हे राधारानी! आप ही रसिक राज श्रीकृष्ण की प्राणप्यारी, रस की निर्झरिणी हैं। आप ही नवीन स्वर्णलतिका बनकर श्रीकृष्ण रूप कल्पवृक्ष को प्रसन्न करती रहती हैं। आप मुनियों के लिए दुर्लभ तथा मोरमुकुटधारी श्रीकृष्ण की प्राणबल्लभा हैं। परमरस चन्द्र श्रीकृष्ण की नवीन कौमुदी राधारानी मेरी प्रसन्नता के लिए आप प्रमुदित मुखवाली हों अर्थात् एक बार प्रसन्न मुख से मुस्कुरा दें।

तवैव करुणादृशा क्षपितभक्तिबाधा न्वहम्
मुरारिचरणाम्बुजाधिकृतकैंकरीमीयुषी।
निधेहि मम शेमुषीं निजमुखाब्जशीधूजुषि
प्रभग्नतपनत्विषि प्रणतवर्गवाच्छापुषि।।७।।

माधवी टीका—हे श्यामा जी! आपकी ही करुणा दृष्टि से निश्चय ही मैं भक्ति की बाधाओं को दूर करके मुरशत्रु के नाशक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के अधिकृत कैंकर्य को प्राप्त कर सकी। हे वृषभानुनंदिनी! अब आप मेरी बुद्धि को अपने अधरामृत का पान करने वाले संसार ताप को दूर करने वाले प्रणतजनों के वाच्छाकल्पतरु श्रीकृष्णचन्द्र में लगा दीजिए।

क्व चाऽहमकलाङ्किका कृतकुरूपकुब्जाकुला
क्वचासि गुणगौरवग्रथितगुम्फसीमन्तिनी।
सपत्न्यहमहो कथं तवभवेयमार्यव्रते
किमर्हति पिपीलिका कलकलां चिरं चुम्बितुम्।।८।।

माधवी टीका—हे आर्यव्रत सम्पन्न राधारानी जी! कहाँ तो मैं विकलांग, कुरूप, कुब्जा कुलहीन एक साधारण दासी, और कहाँ आप सम्पूर्ण सद्गुणों से युक्त सौभाग्यवती महिलाशिरोमणि किसी भी अंश में आपकी मेरी समता ही नहीं। फिर मैं आपकी सौतन कैसे हो सकती हूँ। भला पृथ्वी पर रहने वाली एक नन्हीं सी चींटी कहीं कलाधर चन्द्रमा की कला को चूमने का साहस कर सकती है?

न मां त्वमभिंनिन्दितुं मनसि कांक्ष कञ्जानने
कदापि तव भावनां क्षपयितुं मनाङ्नोत्सहे।
मृगाङ्कमुखमाधुरीजुषमशेषशोभापुषं
चकोरकसुता कथं तुलयितुं ह्यलं रोहिणीम्।।९।।

माधवी टीका—हे कमलमुखी राधा रानी! आप कभी भी मेरी निन्दा करने की न सोचें। मैं कभी भी आपकी भावना को पीड़ित करने का

उत्साह नहीं करूँगी। क्योंकि क्या चकोर कन्या चन्द्रमा की मुख माधुरी का सेवन करने वाली सम्पूर्ण शोभायुक्त रोहिणी की तुलना करने का कभी साहस कर सकती है?

न मेऽस्ति समता त्वया विजितकोटिरत्याभया
प्रसन्नमुखमाधुरीजनितशैलभृल्लोभया।
वितर्तुमिह कारुणीं कुरूमनोलसत्तारूणीं
मयि स्वपदपंकजे प्रणतदेहयष्ट्यां सखि।।१०।।

माधवी टीका—हे प्रिय सखी राधारानी जी! आपनी आभा से करोड़ों रतियों को जीतने वाली तथा अपनी प्रसन्न मुखमाधुरी से गोवर्धनधारी श्रीकृष्ण में भी लोभ उत्पन्न कर देने वली आपश्री राधारानी के साथ मेरी तुलना कभी हो ही नहीं सकती। हे भगवती अब मुझपर अपनी नवीन करुणा का वितरण करने का मन बना लीजिए। क्योंकि मैं आपके ही श्रीचरणकमल पर अपनी शरीर यष्टिका को प्रणत कर चुकी हूँ। अतः मुझ पर कृपा कीजिए।

जयन्ति यमुनातटोल्लसितराधिकामाधवी–
विहारनवकेलयो रुचिररासतुष्टालयः।
प्रशुष्कभववार्धयः क्षपितभक्तिबाधाधयो
मदीयहृदयाजिरे नवलदम्पती क्रीडताम्।।११।।

माधवी टीका—मनोहर रास लीला से सखियों को संतुष्ट कर देने वाली, कोटि कोटि भवसागरों को सोख लेने वाली, तथा भक्तिमार्ग की बाधा एवं मनोव्यथा को नष्ट करने वाली श्रीयमुना तट पर नित्य विराजित श्रीराधामाधव की नित्यविहाररसकेलियों की जय हो। और मेरे

हृदयाङ्गण में नवल दम्पति श्रीराधामाधव निरन्तर विहार करते रहें।

प्रतिभ्रमरगीतकं विविधवृत्तसंगीतकं
सुपत्रमिह कुब्जया ललितलेखमुल्लेखितम्।।
बसूडुपकसंख्यया कलितबन्धभक्तिप्रदं
पठन्तु किल गोपिकागिरिधरेरितं वः शुभम्।।१२।।

माधवी टीका—इस प्रकार हे गोपिकाओं! भ्रमरगीतों का प्रत्युत्तर रूप ललित नव छन्दों में सुन्दर रीति से गाया हुआ सुन्दर लेख में कुब्जा द्वारा लिखित १०८ श्लोकों में निबद्ध श्रीकृष्ण की भक्ति को संवर्धित करने वाले गिरिधर अर्थात् श्रीकृष्ण द्वारा प्रेरित एवं जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामीरामभद्राचार्य गिरिधर कवि द्वारा रचित यह कुब्जापत्रनामक पत्रखण्डकाव्य आप सब निश्चयपूर्वक पढ़ें। आपका कल्याण हो।

इति धर्मचक्रवर्तिश्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु-रामानन्दाचार्य महाकवि स्वामिश्रीरामभद्राचार्यगिरिधरकृतौ कुब्जापत्रे राधिकासम्बोधनाख्यं नवमं पृष्ठम्।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु।

जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट उ०प्र०
का
कुलगीत

विश्व के विकलांग जन का विश्वविद्यालय अनूपम,
चित्रकूट वनस्थली में सुभग सारस्वत समागम,
विश्व के विकलांग जन.....।

कल्प भारत का विमल 'उत्तर प्रदेश'- प्रकल्प है यह,
'जगद्गुरु श्री रामभद्राचार्य' का संकल्प है यह,
विकल मानवता समर्चन हेतु यह मन्दिर मनोरम,
विश्व के विकलांग जन.....।।१।।

अब निजी अधिकार से विकलांग वंचित क्यों रहेगा,
हो पराश्रित खिन्न मन अपमान जग का क्यों सहेगा,
भावनाओं का करेगा राष्ट्रहित वह मधुर उद्गम,
विश्व के विकलांग जन.....।।२।।

धर्म का विज्ञान से करके सतत शाश्वत समन्वय,
विश्वविद्यालय हरे विकलांग का संकट महाभय,
अब छिड़ेगा ग्रीष्म में मधुमास का संगीत सरगम,
विश्व के विकलांग जन.....।।३।।

सूचना प्रौद्योगिकी विज्ञान में हों पूर्ण शिक्षित,
धर्म संस्कृति रामकृष्णादर्श गीता योग दीक्षित,
अब बनेंगे कर्मयोगी हर निराशा का निविड तम,
विश्व के विकलांग जन.....।।४।।

मन्द को मति, बधिर को श्रुति, दृष्टिबाधित को सुदृष्टी,
लुन्ज को कृति, पंगु को गति, मूक को दे वचन सृष्टी,
विश्वविद्यालय करे विकलांग जन को विगत सभ्रम,
विश्व के विकलांग जन.....।।५।।

'रामभद्राचार्य जिसके नित्यमेव 'कुलाधिपति' हैं,
विश्व के विकलांग भगिनी-बन्धु जिसके सुर सुमति हैं,
यह सजाएँ देवगृह निष्ठा कमलदल से सदा हम,
विश्व के विकलांग जन.....।।६।।

—इति श्रीराघवीयो
जगद्गुरु रामभद्राचार्य

जय विकलांग

मानवता ही मेरा मन्दिर, मैं हूँ उसका एक पुजारी।
हैं विकलांग महेश्वर मेरे, मैं हूँ उनका कृपा भिखारी।।

—जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य